॥ ओ३म् ॥

मेरी आत्मकथा

लेखक—

श्री गंगाप्रसाद एम. ए., एम. आर. ए. एस.,

प्रकाशक—

आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर ।

॥ ॐ ॥

असतो मा सद् गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय।

मेरी आत्मकथा

लेखक—

श्री पण्डित गंगाप्रसाद एम. एम., एम. आर. ए. एस.,
रिटायर्ड चीफ जस्टिस टिहरी गढ़वाल राज्य,
भूतपूर्व प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा,
देहली।

प्रकाशक—

आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर।

प्रथम बार १००० प्रति | संवत् २०११ वि०, सन् १९५४ ई० | मूल्य २)

ओ३म्

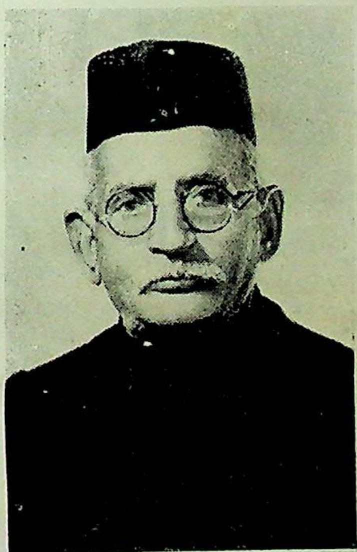
कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म्म लिप्यते नरे ॥

(यजुर्वेद अ० ४० मन्त्र २)

सत् कर्म्मों को त्याग भाव से करते हुए ही सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करे । हे मनुष्य ! केवल इसी प्रकार तू कर्मों के वन्धन से छूट सकता है, और कोई मोक्ष का मार्ग नहीं है ।

श्री माननीय वर श्री० इन्द्रजी विद्यावाचस्पति कार्यकर्ता प्रधान सार्वदेशिक सभा देहली

के कर कमलों में सादर भेंट।



श्री गंगाप्रसाद

जयपुर सं० २०१० वि०

★ पुस्तक समर्पण ★



श्री राजा ज्वालाप्रसाद



श्री पं. घासीराम
M.A L-L.B.

★



भाई प्यारेलाल
B.A L-L B.

अपने परम आदरणीय मित्र **श्री राजा ज्वालाप्रसाद**, अपने
योग्य सुहद् **श्री पण्डित घासीराम** एम.ए.एल.एल.बी.,
और अपने परम स्नेहभाजन भाई **श्री बाबू**
प्यारेलाल बी.ए., एल.एल.बी.
की

पुण्य स्मृति में

जिनके सद् विचारों, व शुभ भावनाओं से मुझको जीवन में सदा
अमूल्य सहायता मिलती रही

यह पुस्तक सादर व सप्रेम समर्पित है।

विनीत—**गंगाप्रसाद**

प्राक्कथन

ओ३म् भद्रं नो अपि वातय मनः

(ऋ० १०।२०।१)

वर्त्तमान जगत् के साहित्य में "आत्म कथा" एक विशेष स्थान रखती है। यह मानी हुई बात है कि आत्मसमीक्षण या अन्तरवेक्षण आत्मोन्नति का मूल साधन है। यह आत्म समीक्षण या अन्तरवेक्षण की न तो प्रवृत्ति, न योग्यता ही सब किसी में होती है। कठोपनिषद् का वचन है–

कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मान मैक्षत् (६.१), अर्थात् कोई विरले धीर बुद्धिमान मनुष्य ही ऐसे होते हैं जो आत्म समीक्षण की ओर प्रवृत्त होते हैं।

उक्त आत्म समीक्षण की प्रवृत्ति से अनुप्राणित लोककल्याण की बुद्धि ही वास्तविक आत्म कथा की प्रेरक होती है। ऐसी ही आत्म कथा कल्याण पथ के पथिक को जीवन में सच्चे मार्ग प्रदर्शक का काम करती है।

"अग्ने नय सुपथा राये" (यजु० अ० ४०।१६) तथा **"संपूषन विदुषा नय यो अंजसानुशासति यएवेदमिति ब्रुवत्"** (ऋग् ६।५४।१), इत्यादि वेद मन्त्रों से ऐसे ही मार्ग प्रदर्शन की ओर संकेत किया गया है।

वास्तविक आत्म कथा के महत्व का रहस्य यही है। प्रकृत आत्म कथा वास्तव में इसी कोटि का ग्रन्थ है। मैं अपना

सौभाग्य समझता हूँ कि मुझे इस प्राक्कथन के लिखने के प्रसंग से इसको आद्योपान्त पढ़ने का सुअवसर मिल सका।

मुझे तो इस आत्म कथा में एक ऐसे उदात्त चरित्र के दर्शन हुए जिसमें यम नियमों के पालन में सावधानता के साथ साथ, कर्म योग ज्ञान योग तथा भक्ति योग का अनोखा सामंजस्य पाया जाता है।

आत्म कथा के लेखक श्री पं० गंगा प्रसाद जी का जीवन प्रारम्भ से ही एक आदर्श आर्य जीवन रहा है। स्कूल की छोटी अवस्था से लेकर आज ८२ वर्ष की अवस्था तक आपको आर्य जीवन रहा है। स्कूल की छोटी अवस्था से लेकर आज ८२ वर्ष की अवस्था तक आपको आर्य समाज और वैदिक धर्म की ओर जैसी सच्ची और तीव्र लगन बराबर रही है उसका दूसरा उदाहरण मिलना कठिन है। इस लम्बे काल में वैदिक धर्म की तन मन धन से, अथवा मनसा, वचसा, कर्मणा से जो सेवा आपने की है वह अद्वितीय है। गत ५०–६० वर्षों में आर्य समाज का कोई भी महत्त्व का आन्दोलन या कार्य न होगा जिसमें आपका सक्रिय सहयोग न रहा हो। आर्य समाज के क्षेत्र से बाहर भी सामाजिक सुधार तथा **पंचांग संशोधन** आदि के विषय में आपने जो महत्त्वपूर्ण कार्य किया है वह सदा स्मरणीय रहेगा।

आपने २२ वर्ष तक ब्रिटिश सरकार की सेवा की। यह समय अधिकतर ऐसा था जब कि सरकार आर्य सामाजिकों को राज विद्रोही समझती थी। तिस पर भी आपका आर्य समाज से बराबर सक्रिय सम्पर्क बना रहा। स्वर्गीय श्री सर जेम्स मेस्टन लफ्टेंट गवर्नर संयुक्त प्रदेश के साथ गोरखपुर में जो वार्तालाप आपका हुआ था उसका आर्य समाज के इतिहास में एक महत्त्व पूर्ण स्थान रहेगा।

सरकारी सेवा काल में आप जहां कहीं रहे, वहां सरकार व प्रजा दोनों ने आपके कार्यों का बहुत मान किया।

सरकारी सेवा से निवृत्त होकर आप १७॥ वर्ष तक **टिहरी गढ़वाल** राज्य में न्यायाध्यक्ष के पद पर रहे, वहां आपने राज्य प्रतिनिधि सभा स्थापित करवा कर उस राज्य के लिये उत्तम कानून बनवाये जिनका वहां पहले अभाव था। गढ़वाल प्रान्त **तपोभूमि** के नाम से प्रसिद्ध है। **तीर्थ** और **मंदिरों** की बहुलता है। उनके सुधार व सुप्रबन्ध के लिये साधु सुधार व **तीर्थ सुधार** विधान बनाये जो सन् १९४७ में राज्य के **युक्त प्रान्त** के साथ एकीकरण होने पर भी विशेष उपयोगी होने से वहां लागू रक्खे गये।

रियासत से पूर्ण अवकाश प्राप्त करने पर सन् १९४० में महाराजा साहब की प्रेरणा से श्रीमान् वाइसराय महोदय ने आपको **रायबहादुर** पद देकर संमानित किया।

भाषण शक्ति, लेखन शक्ति तथा विद्वत्ता के साथ मनन शक्ति आपके जैसा अद्भुत सामंजस्य बहुत कम देखने में आता है। आप के सुप्रसिद्ध ग्रन्थों के अनेकानेक संस्करण और विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनुवाद आपकी विद्वत्ता और योग्यता के साक्षी हैं।

एक दृढ़ आर्य्य होने के साथ साथ विचारों का औदार्य और दूसरे के दृष्टिकोण का मान करना, यह आपकी एक बड़ी विशेषता रही है।

इस वृद्धअवस्था में भी **कठोप निषद् भाष्य** जैसे ग्रन्थों का लिखना और विचारणीय विषयों पर अपने गंभीर विचारों को जनता के सामने बराबर लेखों द्वारा रखते रहना, निःसन्देह एक असाधारण बात है।

इस सबसे ऊपर आपका पवित्र आध्यात्मिक जीवन और ईश्वर में विश्वास किसको प्रभावित न करेंगे।

ऐसे ही दुर्लभ गुणों के कारण इस आत्म कथा का असाधारण महत्त्व है। एक प्रकार से यह आर्य समाज की प्रगति का एक अच्छा खासा इतिहास है, जो हमारे मत में अनेक दृष्टियों से महत्व युक्त सिद्ध होगा। साथ ही साधनामय जीवन के पथ पर चलने की इच्छा रखने वालों के लिये यह एक स्वाध्याय पुस्तक का भी काम करेगा।

नव युवकों, गृहस्थों, और गृहस्थाश्रम से विरत लोगों के लिये मार्ग प्रदर्शन की पर्याप्त सामग्री पुस्तक में वर्तमान हैं। हमारा विश्वास है कि सच्ची लगन महान् आदर्श, संयत जीवन परोपकार की भावना स्वाध्यायशीलता, और अन्त में—"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजी विषेच्छतं समाः" (यजु० ४०।१७)

इह चेद वेदी दथ सत्यमस्ति न चेदिहा वेदोन्महती विनष्टिः

(केनोपनिषत—२।५)

इन महान् वैदिक आदर्शों की सजीव प्रेरणा इस आत्मकथा से प्राप्त होगी।

हम नम्रता और आदर के साथ पुस्तक का हृदय से स्वागत करते हैं, और आशा करते हैं कि आर्य्य जनता इससे अधिक से अधिक लाभ उठावेगी। ओंशम्॥

वैदिक स्वाध्याय मन्दिर,
बनारस छावनी,

(ह०) मंगलदेव शास्त्री
एम. ए., डी. फिल (आक्सन),
रिटायर्ड प्रिंसिपल गवर्नमेंट संस्कृत कालेज,
बनारस।

सूची पत्र

भाग २

आर्य विरक्त आश्रम में निवास व सेवा कार्य।
सम्वत १९९६ से सं० २००५ वि० तक,
(सन् १९३९ से सन् १९४८ ई० तक)

भाग ३

जयपुर में निवास और सेवा कार्य

सम्वत २००५ वि० से सं० २०११ तक
[सन् १९४८ से सं० १९५४ ई० तक]

—इति—

ॐ

मेरी आत्मकथा

भाग १

खण्ड १—बाल्यकाल व शिक्षा

अ० १—जन्म—मेरा जन्म सं० १९२८ वि० के वैशाख शुदी ३ अक्षय तृतीया के दिन अर्थात् सन् १८७१ ई० के मई मास में मेरठ नगर के मुहल्ले अन्दर कोट में हुआ था, जो तहसील के पास है। मेरे पिता का नाम लाला रामदास था माता का नाम श्री सुखदेवी था। पितामह का नाम लाला फकीरचन्द था। वे कपड़े का व्यवसाय करते थे, जिससे साधारण रूप से घर का निर्वाह होजाता था। मेरी जन्मगत जाति रस्तोगी थी।

अ० २—बाल्यकाल व आरम्भिक शिक्षा

मेरी शिक्षा का आरम्भ ७ वर्ष की आयु में एक छोटी पाठशाला में हुआ जहाँ हिन्दी (मुण्डी) व देवनागरी पढ़ाई जाती

थी और साधारण गणित व दूकानदारी का हिसाब रखने की विधि सिखलाई जाती थी। आठ वर्ष की उमर में मैं गवर्नमेंट हाई-स्कूल में भरती हुआ। उस समय इतने छोटे बालक अंग्रेजी स्कूलों में कम जाते थे। इस लिए पहले हैड मास्टर ने भरती करने से इन्कार कर दिया। फिर मेरे दादा लाला फकीरचन्द मुझको सेकण्ड मास्टर पं० गैंदनलाल जी के पास लेगये जो मेरठ आर्यसमाज के प्रधान थे और मेरे दादा को सभासद होने से जानते थे। इससे पूर्व मेरे दादा मुझको एक दो बार आर्यसमाज मेरठ के जलसों में लेगये थे, कुछ मन्त्रादि कण्ठस्थ करके मैंने सुनाये थे। इसलिए पं० गैंदनलाल जी मुझको पहचानते थे। वे मुझको हैडमास्टर के पास लेगये और मेरी प्रशंसा की। हैड-मास्टर ने कुछ साधारण परीक्षा लेकर मुझको १० वीं कक्षा में (जो सब से निचली कक्षा थी) भरती कर लिया, मेरी स्मरण शक्ति अच्छी थी और पढ़ने लिखने में भी तेज था। पं० गैंदन-लालजी जो पीछे हैडमास्टर होगये मुझ पर स्नेह करते थे, और मेरा नाम Little Boy (छोटा लड़का) रखा हुआ था। मैं अपनी कक्षा के अच्छे लड़कों में रहता था।

अ० ३—विवाह—यद्यपि मेरे दादा आर्यसमाज के सदस्य थे, तो भी मेरा विवाह उस समय की लोक प्रणाली के अनुसार १२ वर्ष की आयु में होगया। मेरी स्त्री का नाम नारायण देवी था। उसका देहावसान सं० १९५५ में होगया। सं० १९५७ में मेरा दूसरा विवाह प्रेमदेवीजी के साथ हुआ।

अ० ४–मिडिल पास करना–सन् १८८५ (सं० १९४२) में मैंने मिडल परीक्षा पास की। मैं प्रथम श्रेणी (Division) में पासहुआ और मेरा स्थान अपनी कक्षा में सर्व प्रथम रहा। उस समय शिक्षा की कमी के कारण मिडल परीक्षा पास करने वालों का मान आजकल के बी. ए. व एम. ए. पास करने वालों के समान होता था। मेरी आयु भी कम थी। मैं नगर में जहाँ जाता था लोग अँगुली उठाकर कहते थे–इस बालक ने मिडिल परीक्षा करली है।

अ० ५–धार्मिक विचार–बाल्यकाल से ही मेरी धर्म की ओर रुचि थी। यद्यपि मेरे दादा आर्यसमाजी थे, पर में प्रतिदिन स्नान करके विष्णु सहस्त्र नाम का पाठ करता था और शिव मंदिर में जो घर के पास ही था, शिव की मूर्ति पर जल चढ़ाया करता था। मैं प्रति रविवार को सरस्वती के मंदिर में जाकर जो नगर के बाहर था घी का दीपक जलाता था, प्रति मंगलवार को हनुमान के मंदिर में दीपक जलाता था। मेरे दादा मेरी इन बातों का उपहास किया करते थे, पर मेरे इन कार्यों में बाधा नहीं डालते थे।

सत्यार्थ प्रकाश का प्रभाव—सं० १९४२ में मेरे दादा ने सत्यार्थ प्रकाश जिसका दूसरा संस्करण छप गया था खरीदा। वे वृद्ध और दमे के रोग से रुग्ण होने के कारण अधिकतर लेटे रहा करते थे। उनकी आँखें भी कमजोर थीं। इसलिये उनको सत्यार्थ प्रकाश सुनाने का काम मेरे सुपुर्द हुआ। मैंने सत्यार्थ प्रकाश का कुछ भाग पढकर उनको सुनाया परन्तु शेष पुस्तक को स्वयं

पढ़ डाला। उसके पढ़ने से मेरे धार्मिक विचारों की कायापलट हो गई। मैं मूर्ति पूजक से दृढ़ आर्य बन गया. और मेरठ आर्य-समाज के साप्ताहिक सत्संगों में जाने लगा। नवीन संस्था होने से उस समय जनता में आर्यसमाज की बहुत चर्चा रहती थी।

अ० ६—आर्य डिबेटिंग क्लब—स्मरण शक्ति अच्छी होने से सत्यार्थ प्रकाश का बहुत सा भाग मुझको कण्ठस्थ हो गया था। आर्यसमाज के तत्कालीन अल्प साहित्य की कुछ और पुस्तकें भी मैंने पढ़ली थीं। आर्यसमाज का आन्दोलन बालक युवा वृद्ध सभी लोगों में रहता था। मुझे उसमें विशेष उत्साह था इसलिये मेरा बहुत सा समय विद्यार्थियों के साथ धार्मिक वार्तालाप व विवाद करने में व्यतीत होता था। सं० १९४३ में मैंने अपने घर पर आर्य डिबेटिंग क्लब Arya Debting Club के नाम से एक बाल सभा स्थापित की, जिसमें अधिकतर विद्यार्थी शामिल हुए। इसमें धार्मिक विषयों पर भाषण व वाद-विवाद होते थे। यह कार्य अधिकांश में मुझ को ही करना होता था। मेरे मित्र स्व० श्री घासीरामजी भी जिनकी आयु मुझसे एक वर्ष कम थी और जिनका घर मेरे घर के पास ही था, आरम्भ काल से इस क्लब में भाग लेते थे। सं० १९४४ (सन् १८८७) में जब मैं हाई स्कूल परीक्षा पास करके कालिज में भरती होने के लिये आगरा जाने लगा तो यह क्लब मेरे मकान से उठ कर श्री घासीरामजी के मकान पर चला गया, और २ या ३ वर्ष तक वहीं रहा। पीछे उसको आर्यसमाज का मन्दिर बन जाने पर उस मन्दिर में

स्थान मिल गया, और वह आर्यकुमार सभा के नाम से अब तक जारी है। बाल सभा के रूप की यह आर्यसमाज में पहली संस्था थी। पीछे आर्य कुमार सभा, आर्य युवक सभा आदि नामों से अनेक संस्थायें भिन्न भिन्न स्थानों पर स्थापित हुईं। कुछ समय पीछे उनके प्रान्तीय व अखिल भारतीय संगठन भी होगये।

अ० ७–आगरा जाना और आर्यमित्र सभा की स्थापना– सं० १९४४ (सन् १८८७ ई०) में उस समय मेरठ में कालिज न होने से मैं आगरा कालिज की एफ० ए० श्रेणी में भरती हो गया। वहाँ बोर्डिंग हाउस नं० ५ में रहने को स्थान मिला। वहाँ भी मैंने आर्य डिबेटिंग क्लब आरम्भ करने का यत्न किया। परन्तु बोर्डिंग हाउस के सुपरिटेंन्टेन्ड (अध्यक्ष) ने उसका विरोध किया। तब आर्यमित्र सभा के नाम से एक संस्था उसी उद्देश्य से राजामण्डी में जो बोर्डिंग हाउस के समीप ही है एक उत्साही आर्य विद्यार्थी, ठा० हनुमन्तसिंह के घर पर स्थापित की गई। इसमें सभासद अधिकांश विद्यार्थी ही थे, कुछ अन्य युवक भी थे। यह संस्था अभी तक जीवित है इसने आगरे में कुछ कार्य किया पर अब शिथिल अवस्था में होनी कही गई।

अ० ८–बोर्डिंग हाउस नं० ६–कुछ कारणों से कुछ मास पीछे मैं बोर्डिंग हाउस नं० ५ से नं० ६ में चला गया जिसमें भविष्य में आर्य जगत् के प्रसिद्ध नेता और श्रीमती परोपकारिणी सभा के मन्त्री श्री हरविलास शार्दा, तथा स्व० पं० बिष्णुलाल शर्मा बरेली निवासी दृढ़ आर्य रहते थे। पीछे से, आगरा कालिज के आर्य-

समाजी विद्यार्थी विशेषकर इसी बोर्डिंग हाउस में आकर रहने लगे। उनमें मेरठ के मेरे पुराने मित्र स्व० श्री घासीराम जी, व पहासू निवासी स्व० श्री ज्वालाप्रसाद व उनके छोटे भाई स्व० श्री शिवप्रसाद, जालन्धर निवासी स्व० श्री नारायणदास प्रमुख आर्यों के नाम लिखने योग्य हैं। स्व० श्री पं० लेखराम आदि आर्य उपदेशक आगरा आने पर बहुधा इसी बोर्डिंग हाउस में ठहरा करते थे॥

अ० ९–आर्यसमाज आगरा से संबन्ध–आर्यसमाज आगरा में उस समय आगरा कालिज तथा मेडिकल स्कूल के विद्यार्थियों की संख्या अधिक थी। मुझ को संस्कृत भाषा की ओर विशेष रुचि थी। आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संगों में वेद भाष्य का पाठ अथवा अन्य प्रवचन बहुधा मैं ही किया करता था। आगरा में मेले बहुत होते हैं। लगभग सब मेलों में मैं तथा कुछ अन्य विद्यार्थी (जिन में सर्वश्री स्व० घासीराम जी, स्व० ज्वाला-प्रसाद जी, स्व० नारायणदास जी प्रमुख थे) प्रचार के लिये जाया करते थे। आर्यसमाज के उस प्रारंभिक युग में वैतनिक उपदेशक बहुत कम होते थे। लगभग प्रत्येक आर्यसमाजी अपने को एक अवैतनिक प्रचारक समझता था और उसी भाव से काम करना चाहता था। मुझ को उस समय भाषण करने का अच्छा अभ्यास हो गया था, और मेले आदि में बिना संकोच या कठिनाई के व्याख्यान दिया करता था।

अ० १०–ज्योतिश्चन्द्रिका प्रकाशन–आगरा कालिज की

लाइब्रेरी में संस्कृत के पुस्तकों का अच्छा संग्रह है। मैंने पाठविधि से बाहर की बहुत सी पुस्तकें पढ़ीं। सिद्धान्त शिरोमणि, सूर्य सिद्धान्त आदि ज्योतिष के ग्रन्थों में पृथिवी की गोलाई, उसके व्यास व परिधि का मान, पृथ्वी का घूमना, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, आदि के वर्तमान साइन्स Science के अनुकूल वर्णन देख कर मुझको उत्साह हुआ और मैंने इन विषयों पर सं० १९४६ में (जब मैं बी० ए० क्लास में विद्यार्थी था) "ज्योतिश्चन्द्रिका" नामक पुस्तक लिखी। उसमें फलित ज्योतिष का खण्डन भी था जिसकी सामग्री का अधिक भाग मुझको मेरठ के एक आर्यमित्र स्व० पण्डित गौरीदत्त जी ने दिया था जो स्वयं "ज्योतिषी" थे, परन्तु आर्य-समाजी होने के कारण फलित को झूँठा और अवैदिक मानते थे। यह पुस्तक मेरी पहली कृति थी। उसका अच्छा मान हुआ, स्व० श्री महात्मा मुंशीराम जी ने अपने "सद्धर्म प्रचारक" पत्र में उसकी बहुत प्रशंसा की। पूना के एक मरहठी पत्रकार ने मेरी अनुमति, बिना उसका मरहठी भाषा में अनुवाद कर के अपने पत्र में छापना प्रारंभ कर दिया मेरे एक हैदराबाद निवासी आर्यमित्र ने इसकी मुझे सूचना दी। मुझको इस प्रकार के प्रचार में क्या आपत्ति हो सकती थी ?

अ० ११—आर्यसमाज आगरा के मन्दिर का निर्माण—सं० १९४७ में मैं आर्यसमाज आगरा का मन्त्री भी निर्वाचित हो गया था। आर्य-मन्दिर के निर्माण के लिये जिन ६ या ७ सभासदों के नाम से भूमि खरीदी गई थी उन में मेरा भी नाम था। इस समय उन

में से केवल मैं ही जीवित हूँ। उक्त भूमि पर चन्दे वा दान के रूप में धन संग्रह करके आर्य-मन्दिर बनना आरम्भ हुआ और कुछ समय में पूरा तैयार हो गया। उसमें इस समय दयानन्द एंग्लो वैदिक कालिज भी स्थित है।

अ० १२—प्रचार कार्य—मेले आदि में प्रचार करने के अतिरिक्त मैं स्व० श्री ज्वालाप्रसाद, स्व० श्री नारायण दास आदि के साथ एक या दो वर्ष तक सायंकाल फोर्टस्टेशन व किले के पास बाजार में भी व्याख्यान दिया करता था। सं० १९४८ या १९४९ में जगद् गुरु शंकराचार्य नामधारी (शायद द्वारिका पीठ के थे) आगरे में आये। उनके कई व्याख्यान आर्यसमाज के विरोध में नगर में हुए। उनके उत्तर में मैंने २ या ३ व्याख्यान दिये जिनमें आर्यसमाज का जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा। उस समय आगरे में प्रचार करने के अतिरिक्त कालिज के दीर्घावकाश में मैं बहुधा आसपास बाहर समाजों में जाकर व्याख्यान दिया करता था। इस प्रकार मथाना, बदायूँ, मुरादाबाद, बरेली आदि स्थानों पर कई बार गया था।

अ० १३—कालिज की शिक्षा—मैं कालिज में अपनी कक्षा में सदा सर्व प्रथम रहा। बी० ए० परीक्षा में सं० १९४८ (सन् १८९१ ई०) में इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में मेरा दूसरा नम्बर था जिसके फल स्वरूप सरकारी छात्रवृति २०) मा० की एम० ए० की तैयारी के समय मिलती रही। उससे पूर्व भी हर कक्षा में मुझ को कालिज की ओर से योग्यता के आधार पर छात्रवृत्ति मिलती रही थी।

अ० १३–कठिन रोग–बी० ए० परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद सं० १६४६ में मुझको खाँसी व ज्वर रहने लगा। आगरा मेडिकल स्कूल के प्रोफेसर ने (जो छाती के रोगों के विशेषज्ञ थे) क्षयी Pthisis रोग का आरम्भ बतलाया, और मुझे कालिज छोड़ने की सलाह दी। एक वर्ष कालिजसे बाहर मेरठ रह कर इलाज कराना पड़ा। ईश्वर की कृपा से क्षय रोग तो रुक गया, परन्तु शरीर बहुत दुर्बल और स्वास्थ्य की दशा बहुत हीन हो गई। सं० १६५० (सन् १८६३ ई०) में मैं केवल एम० ए० की परीक्षा में बैठ सका। एल० एल० बी० परीक्षा जिसकी पहले से कुछ तैयारी थी छोड़नी पड़ी। एम० ए० (अंग्रेजी) परीक्षा में मैं अच्छी तरह उत्तीर्ण हो गया।

अ० १४–जोधपुर में मांस भक्षण विषयक आन्दोलन–एम. ए. परीक्षा पास करने के बाद सं० १६५० (जून मास सन् १८६३) में मुझ को जोधपुर जाने की आवश्यकता हुई। उस समय स्व० स्वामी प्रकाशानन्द जी जोधपुर में रहते थे, वे इस पक्ष के समर्थक थे कि मांस भक्षण वेद विरुद्ध नहीं। महाराजा साहब सर प्रतापसिंह (जो श्री महाराजा साहब जसवन्तसिंह जी के अनुज थे) उस समय जोधपुर राज्य के दीवान और आर्यसमाज जोधपुर के प्रधान थे। वे ऋषि दयानन्द के परम भक्त और एक प्रमुख शिष्य थे। वे बड़े सदाचारी और शूरवीर थे। उनका कहना था कि 'दयानन्द ने उनको कभी मांस खाने से रोका नहीं'। इसलिये जोधपुर में उस समय यह प्रश्न उठा कि मांस भक्षण वेद विरुद्ध

है या नहीं। इसके निर्णय के लिये महाराजा प्रतापसिंह जी ने स्व० श्री पं० भीमसेन जी को (जो संस्कृत के अच्छे विद्वान् और ऋषि दयानन्द के पुराने सहायक होने से आर्यजगत् में प्रसिद्ध थे) बुलवाया। पंजाब आर्यसमाजो की ओर से स्व० पंडित लेखराम भेजे गये। आर्यसमाज आगरा व आर्य प्रतिनिधि सभा युक्त प्रान्त के आदेश से मैं भी जोधपुर गया। हम सब महाराज सर प्रताप-सिंह जी के अतिथि थे और उसी बँगले में ठहराये गये जहाँ स्वामी प्रकाशानन्द जी ठहरे हुए थे। पं० भीमसेन जी साधारणतया हम सब के साथ ही महाराजा साहब से भेंट करने को जाया करते थे। उन्होंने महाराजा साहब से हमारी उपस्थिति में पहले यही कहा था कि मांस भक्षण वेद विरुद्ध है। एक दिन पं० भीमसेन जी अकेले ही महाराजा साहब के पास गये। उनके लौटने पर यह बात फैल गई कि पं० भीमसेन ने महाराजा साहब से यह मत प्रकट किया है, कि मांस भक्षण क्षत्रियों के लिये वेद विरुद्ध या धर्म विरुद्ध नहीं है। पं० भीमसेनजी ने ऐसा कहना स्वीकार नहीं किया। तब वे पं० लेखराम जी व मेरी उपस्थिति में महाराजा साहब से मिले और कहा कि पहले दिन उनसे जो वार्तालाप हुआ था उसके विषय में कुछ भ्रम हुआ है। पं० भीमसेन ने अपना मत वही बतलाया जो ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश आदि में लिखा है, परन्तु श्री महाराजा साहब की बातों से यही परिणाम निकला कि पं० भीम-सेन जी जब उन्होंने अकेले महाराजा साहब से भेंट की थी तब कुछ उसके विपरीत कह आये थे। इस विषय पर उस समय आर्य-समाजी पत्रों में विशेष आन्दोलन रहा था।

खण्ड २–मेरठ कालिज में प्रोफेसर पद पर नियुक्ति–

अ० १५–जिस मेरठ हाई स्कूल में मैंने शिक्षा पाई थी वह सं० १९४९ में कालिज हो गया जिसमें बी० ए० तक की शिक्षा दी जाती थी। सं० १९५०में उसमें एक अंगरेजी के प्रोफेसर की जगह खाली हुई। मैंने दर्खास्त दी। आगरा कालिज के प्रिंसिपल श्री टामसन (A. Thomson) ने बड़े प्रबल शब्दों में मेरी सिफारिश की और यहाँ तक लिखा कि "इनसे अधिक योग्य कोई हिन्दुस्तानी ग्रेजुयेट नहीं मिलेगा।" मैं सन् १८९३ में उक्त पद पर नियुक्त होगया। अंगरेजी भाषा के सिवाय लौजिक Logic व इतिहास भी मुझको पढ़ाना होता था। मैं ५ वर्ष तक इस पद पर काम करता रहा। उसके बाद डिप्टी कलक्टरों व पीछे जजी के पद पर मुझको काम करने का अवसर मिला। परन्तु व्यक्तिगत रुचि की दृष्टि से मैंने शिक्षा के कार्य से अधिक प्रिय और कोई काम नहीं पाया।

अ० १६–मेरठ आर्यसमाज से सम्बन्ध–मेरठ में रहते हुए मैंने आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संगों में उपनिषदों की कथा आरंभ की जिसका अच्छा प्रभाव रहा। सत्संगों की उपस्थिति चढ़ गई और समाज की दशा सुधर गई। इन वर्षों में प्रायः आर्यसमाज के प्रधान पद का कार्य भी मैंने ही किया। समाज की ओर से एक आर्य पाठाशाला भी स्थापित थी जिसके निरीक्षक (मैनेजर) का कार्य भी मैं करता था।

अ० १७–मेरठ में उत्तरीय भारतके विद्वान् पादरियों की सभा और पुर्नजन्म विषयपर वादानुवाद–सन् १८९३ के अन्त में

मेरठ में North India Bible Society उत्तरीय भारत के पादरियों की एक विशेष सभा हुई जिसका उद्देश्य बाइबिल के भारतीय भाषाओं के अनुवाद में उचित संशोधन कराना था। बड़े योग्य विद्वान् पादरी इकट्ठे हुए थे। प्रति दिन सायंकाल मिशन स्कूल के भवन में किसी एक विद्वान् का व्याख्यान भी हुआ करता था। एक दिन श्री Rev. Hooper M. A., D. D. प्रिंसिपल मिशन कालिज लाहौर का व्याख्यान अंग्रेजी भाषा में पुनर्जन्म (Transmigration of Souls) विषय पर हुआ। मेरठ के सब शिक्षित लोग, आर्यसमाजी, सनातनी जैन, थियोसोफिस्ट आदि उत्साह के साथ सुनने को गये थे। ईसाई मत के अनुसार पुनर्जन्म का खण्डन ही होना था। मुझ को उसका उत्तर देने के लिये कुछ मित्रों द्वारा कहा गया। मैंने मेरठ के आर्यसमाज मंदिर में पादरी साहब के उत्तर में व्याख्यान दिया। अंग्रेजी भाषा में एक पब्लिक सभा में व्याख्यान देने का यह पहला ही अवसर मुझ को मिला था। पहले लिखकर व्याख्यान देने का कुछ विचार हुआ था। पर अन्त में मौखिक भाषण ही हुआ। ईश्वर की कृपा से भाषण अच्छा हो गया। जनता पर अच्छा प्रभाव हुआ। पादरी लोग सब आये थे। उन्होंने भी मेरे भाषण की प्रशंसा की और यह इच्छा प्रकट की कि यदि मेरा व्याख्यान पुस्तक रूप में छपे तो उनको एक प्रति भेजी जावे। छपवाने का विचार नहीं था।

अ० १८—युक्तप्रान्त आर्य प्रतिनिधि सभा का प्रकाशन कार्य—

मेरठ आर्यसमाज के कार्य्य के सिवाय मैं इन वर्षों में बाहर

आर्यसमाजों के उत्सव आदि विशेष अवसरों पर व्याख्यान देने के लिये निमंत्रित होकर बहुधा जाया करता था। प्रान्त में आर्य-प्रतिनिधि सभा स्थापित हो चुकी थी जिसका मुख्य स्थान कुछ वर्षों तक मेरठ ही रहा। सं० १९५० के लगभग बदायूं आर्यसमाज के उत्साही सभासद मेरे मित्र स्व० श्री सवटमल ने पुस्तक प्रचार के लिये मेरी सलाह से कुछ धन देना स्वीकार किया। इस सहायता से आर्य प्रतिनिधि सभा की अध्यक्षता में एक आर्य ट्रैक्ट सोसायटी स्थापित की गई जिसका मैं मंत्री रहा। उसकी ओर से कतिपय पुस्तकें प्रकाशित हुईं जिनमें से (1) Vedic Text No 1 Constitution of Human Society, (2) Vedic Text No. 2, Septenary Composition of Solar Light, (3) Problems of Life, & (4) Problems of the Universe–मेरे लिखे हुए थे। पहले दो का हिन्दी अनुवाद भी (१) मनुष्य समाज, (२) सूर्य्य सप्ताश्व वर्णन नाम से छपे। ये पुस्तकें अब तक सभा के प्रकाशन विभाग की ओर से छपती रही हैं। इस प्रकाशन विभाग को मेरे सरकारी नौकरी पर चले जाने के बाद मेरे परम मित्र स्व० श्री घासीराम जी ने अपने हाथ में लिया और अन्त तक बड़ी योग्यता से चलाते रहे। प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा का वास्तव में यह न्याय पूर्ण कार्य्य था कि इस विभाग का नाम उनके पवित्र नाम से संयुक्त करके उनको सम्मानित किया।

अ० १९–मेरठ में मेरे स्वास्थ्य की हीन दशा—मैं सन्

१८६३ से १८६८ ई० पाँच वर्ष तक मेरठ में रहा। वहाँ मेरे स्वास्थ्य की दशा गिरती ही चली गई। इसका एक कारण यह था कि १ या १॥ वर्ष पहले मुझको कठिन रोग रहा जिसको डाक्टरों ने क्षयी रोग की प्रारंभिक दशा बतलाई थी। दूसरा, यह भी अनुभव से पाया गया कि मेरठ का वायु जल मेरे स्वास्थ्य के अनुकूल नहीं था। आगेर से मेरठ आने पर मुझको कई प्रकार के रोग होगये, खाँसी, जुकाम, नजला, सदा बने रहते थे। आँखों में Granular Lids रोग-बढ़ गये। अन्त में पढ़ने लिखने का कार्य्य अधिकांश एक लेखक द्वारा कराने लगा। बदहज़मी ने संग्रहणी का रूप धारण किया, जो चार वर्ष तक रही। मेरा भोजन पहले से ही अल्प था, अब बहुत सीमित होगया, भोजन के बहुत से आवश्यक पदार्थ (जिन में दूध भी था) छोड़ने पड़े।, शीत ऋतु में ये सब शिकायतें बढ़ जाती थी, मेरा यह भी एक विशेष रोग था कि सर्दी बहुत लगती थीं। शरीर पर बहुत से कपड़े पहनने पड़ते थे, एक भारी ओवरकोट दिन भर शरीर पर रहता था। शीत ऋतु में दिन में किसी समय भी वह शरीर से उतर नहीं सकता था। कालिज में पढाते समय भी उसको कमरे के भीतर पहने रहता था।

अ० २०—**नियमित जीवन**—मेरा जीवन बहुत नियमित था, भ्रमणके लिये प्रति दिन तीन बार जाता था। भोजन बहुत ही अल्प और सादा था। मेरे बहुत से मित्र जो मेरी रहन सहन को जानते थे आश्चर्य्य किया करते थे कि इतने अल्प भोजन से मैं

किस प्रकार इतना शारीरिक व मानसिक परिश्रम कर सकता हूँ। कोई मित्र कहा करते थे कि मैं इस में अति करता हूँ और कि युवावस्था के पीछे इस की भयंकर प्रतिक्रिया (Dangerous Reaction) होगी। ईश्वर की कृपा से इस समय तक (जब मेरी आयु ८० वर्ष से ऊपर है) ऐसी प्रतिक्रिया नहीं हुई। अब तक के अनुभव से मैं कह सकता हूँ कि यदि मैं इस प्रकार संयम न करता तो शायद मेरे कठिन रोग का दूर व शान्त होना सम्भव न था।

अ० २१–मेरठ छोड़ना–स्वास्थ्य ठीक न रहते हुए भी मैं मेरठ के इन पाँच वर्षों के अपने जीविन को एक महत्वपूर्ण भाग समझता हूँ। मुझ को स्वाध्याय का (जिससे मुझ को सदा प्रेम रहा) अच्छा अवसर मिला। छोटी पुस्तिकाओं के सिवाय जो इसी समय में प्रकाशित हुई, मेरी २ बड़ी पुस्तकों की (अर्थात Fountain-ead of Religeon व Caste System की) जो पीछे प्रकाशित हुई, लगभग सब सामग्री इसी समय में संग्रह हो चुकी थी। आर्यसमाज की भी यथा सामर्थ्य सेवा की। आर्यसमाज इस समय मुझ से अधिकाधिक सेवा की बहुत आशा करने लगा था। वह आशा क्यों पूरी न हो सकी इसका कारण आगे प्रकट होगा।

खण्ड ३–डिप्टी कलक्टरी की परीक्षा और नियुक्ति–

अ० २२–सं० १९५५ में संयुक्त प्रान्त की सरकार ने यह व्यवस्था की कि ८ या ९ जो नये डिप्टी कलक्टर प्रतिवर्ष नियत किये जाते थे उनमें से ३ Competitive Examination अर्थात् प्रतियो–

गिता परीक्षा द्वारा छाँटे जाया करें, शेष पूर्ववत् तहसीलदारों में से अथवा अन्य प्रकार से नियत किये जायँ। कांग्रेस तथा अन्य सुधारक लोग बहुत वर्षों से इस के लिये आन्दोलन करते आते थे।

मेरे गुरु पं० गेंदनलाल जी (जिनका जिकर पैरा २ में आचुका है) इस समय मेरठ में स्कूलों के इन्सपेक्टर थे। उन्होंने आग्रह पूर्वक मुझ को इस परीक्षा में शामिल होने के लिये बाध्य किया, यद्यपि मेरे स्वास्थ्य की दशा ऐसी हीन थी कि मुझ को उस में बैठने का बिलकुल साहस न था और न मेरी उस ओर रुचि थी। मेरा ध्येय यही था कि कानून की एल. एल. बी. परीक्षा को जो मुझ को सं० १८५० में रोग के कारण छोड़नी पड़ी थी, पास कर के वकालत करूँ। मेरे पिता व पितामह का भी पहले से यही विचार था। परन्तु एक अंगरेजी कहावत है कि Man proposes God disposes अर्थात् मनुष्य विचार वा प्रस्ताव करता है पर ईश्वर निर्णय करता है। पं० गेंदनलाल जी के अनुरोध से मुझ को इस (Competitive Examination) प्रतियोगिता परीक्षा में बैठना पड़ा और यद्यपि उसके लिये कुछ विशेष तैयारी भी नहीं की गई थी, परन्तु ईश्वर की कृपा से मैं सफल रहा। लगभग १५० प्रार्थियों में कुछ जाँच के बाद ५० व्यक्ति छाँटे गये थे और परीक्षा में बैठे, जो जुलाई सन् १८६८ में हुई। मेरा स्थान सर्व प्रथम रहा और अक्टूबर मास में मेरी नियुक्ति मिर्जापुर जिले में डिप्टी कलक्ट्री पद पर हो गई।

मेरा मिरजापुर जाना—मिर्जापुर की आबहवा अच्छी नहीं समझी जाती। मेरा स्वास्थ्य पहले ही से गिरा हुआ था। इसलिये मेरे माता पिता को वहाँ जाने से मेरे लिये चिन्ता हुई। परन्तु ईश्वर की कृपा से मिर्ज़ापुर जाकर एक वर्ष के भीतर मेरे लगभग सब रोग (जिनका उल्लेख अ० १६ में किया गया है) बहुत अंश में दूर हो गये। शायद इसका कारण यही रहा हो कि मेरठ की आबहवा मुझको कुछ प्रतिकूल थी और वहाँ पर बैठ कर लिखने पढ़ने ही का काम रहता था। डिप्टी कलक्टरी के काम में दौरा करना और बाहर आना जाना पड़ा। जिले के अधिकारियों ने मुझको ऐसे काम भी देदिये (जैसे सेक्रटरी डिस्ट्रिक बोर्ड व Excie Officer आबकारी हाकिम) जिनके लिये मुझ को सारे जिले में दौरा करना आवश्यक हुआ। मेरी इच्छा न होते हुए भी इस विभाग में मेरी नियुक्ति होना शायद एक दैवी संयोग था जिसमें ईश्वर को मेरी भलाई इष्ट थी। "ईश्वरेच्छा बलीयसी।"

मेरी नियुक्ति पर महात्मा मुंशीराम जी ने जो मुझ पर सदा बड़ी कृपा रखते थे एक पत्र लिखा था कि "आपको बहुत से मित्र बधाई देते होंगे। परन्तु मैं देखूंगा कि आप डि० क० के, पद पर नियुक्त होने के बाद भी आर्यसमाज की वैसी ही सेवा करते हो जैसी कि आप अब तक करते रहे हो।" मुझ को याद नहीं कि मैंने इस पत्र का उत्तर क्या दिया था। परन्तु जो आशा महात्माजी के उस पत्र में प्रकट की गई थी उस की पूर्ति तो असंभव ही थी।

अ० २३-सरकारी नौकरी और आर्यसमाज की सेवा–सरकारी सेवा में जाकर आर्यसमाज की सेवा के अवसर मेरे लिये बहुत अंश में बन्द ही हो गये। उस समय आर्यसमाजी लोग सरकारी अफसरों की निगाह में सन्देह की दृष्टि से देखे जाते थे। परन्तु मेरी नियुक्ति जिस समय हुई मैं मेरठ आर्यसमाज का (जो प्रान्त भर में प्रमुख समाज था) प्रधान था और बाहर की समाजों में भी जाकर प्रचार किया करता था। इसलिये मेरे (Personal Record) में पहले से ही यह नोट लिख दिया गया कि मैं "आर्यसमाजी हूँ" और सूची मेरे पास भी भेजी गई, मैं ने अपने नाम के सिवाय औरकिसी नाम के सामने ऐसा नोट नहीं देखा, यद्यपि दो चार और भी आर्यसमाजी उस सूची में थे, (जैसे स्व० श्री ज्वालाप्रसाद डि० क०, स्व. पं० विष्णुलाल शर्मा मुंसिफ)। इस नोट को देख कर मुझ को बहुत खुशी हुई और मुझ को आर्यसमाज के साथ संपर्क रखने में कोई संकोच का कारण न रहा। परन्तु अपने स्वास्थ्य की हीन दशा के कारण, जो समय सरकारी कार्य्य में लगता था (और वह भी काफी होता था) बाकी समय का बहुत सा भाग स्वास्थ्य रक्षा के साधनों (व्यायाम आदि) ही में लगाना पड़ता था। इसलिये स्वाध्याय (जिसकी ओर मुझ को पहले ही से बहुत रुचि थी), और आर्यसमाज की सेवा के लिये वास्तव में बहुत ही अल्प समय बच सकता था,।

अ० २४–मेरी पहली स्त्री का देहावसान—सं० १९५६ में मेरी पहली स्त्री का, जिनका नाम नारायण देवी था, मेरठ में प्रसव

रोग से देहान्त होगया। मैं उस समय मिर्जापुर में था। मेरी अनुपस्थिति में सब प्रकार की चिकित्सा की गई पर विफल हुई। मेरा विवाह उनके साथ पुरानी प्रथा के अनुसार १३ वर्ष की आयु में हुआ था। मेरे दो बड़े पुत्र, ज्योतिस्वरूप रिटायर्ड डिप्टी कलक्टर जो अब मेरठ में सरकारी काम करते हैं, और शान्ति स्वरूप जो जबलपुर में कपड़े का व्यवसाय करते थे और जिनका गतवर्ष दमे के रोग से देहावसान होगया, उन की सन्तान थे। श्री नारायण देवीजी को मेरी ओर सदा जो सच्चा प्रेम व भक्ति रही मैं उस को जन्म भर कदापि नहीं भूल सकता।

अ० २५—मेरी कन्या सरस्वती का देहावसान—श्री नारायण देवी से एक कन्या थी जिसका नाम सरस्वती था। वह ज्योतिस्वरूप जी से दो वर्ष बड़ी थी। सं० १९६० सन् १९०३ में जब मैं गढ़वाल जिले के लैन्सडौन विभाग में हाकिम इलाका S. D. O. था दौरा करते हुए वानघाट स्थान पर रात के समय सरस्वती की टाँग में पागल कुत्ते ने काट लिया, कुत्ता पागल था यह केवल सन्देह था। उस समय गढ़वाल जिले में इस कठिन रोग Hydrppchbia की चिकित्सा का कोई प्रबन्ध न था। कसौली के प्रसिद्ध अस्पताल में इस की सर्वोत्तम चिकित्सा होती थी। शोक है कि पुत्री सरस्वती को कसौली भेजने का प्रबन्ध नहीं हुआ, साधारण स्थानीय चिकित्सा की गई। एक मास पीछे इस भयंकर रोग Hydıophobia का आक्रमण हुआ। लैंसडौन के मेडिकल अफसर श्री Lt. Sprawson M. D. ने जो मेरे मित्र भी थे बालिका को जिस

की उमर उस समय ८ या ७ वर्ष की थी देखा। रोग की शान्ति का कोई उपाय न था। जैसे जैसे रोग बढ़ता गया और तीव्र पीड़ा होने लगी, क्लोरोफार्म का प्रयोग कर के बेहोश करने का यत्न किया गया। दूसरे दिन प्रातःकाल सरस्वती ने प्राण छोड़ दिये। उस की बीमारी की दशा की एक यह घटना ऐसी थी जिसको मैं कभी नहीं भूल सकता। रात को आधीरात के बाद जब रोग में वृद्धि होने लगी सरस्वती ने बड़े आग्रह से मुझ से कहा "पिताजी कुछ धर्म की बात सुनाइये," मैंने सत्यार्थ-प्रकाश में से जिसको वह कुछ पढ़ा भी करती थी कुछ सुनाया, परन्तु उसने बड़े मार्मिक शब्दों में कहा "कुछ ईश्वर के ज्ञान की बात सुनाइये।" मुझको बड़ा आश्चर्य हुआ कि ऐसी अबोध बालिका की ऐसी इच्छा। कठ उपनिषद् के कुछ वचन सुनाये। जितने समय मैं उन मंत्रों और अर्थों को सुनाता रहा सरस्वती बड़ी एकाग्रता से बिलकुल शान्त होकर सुनती रही। रोग वृद्धि पर कुछ मिनटों के बाद उस की ऐसी दशा हो गई कि ऐसा पाठ व श्रवण असंभव होगया। रात्रि के अन्त में सब ए० सर्जन व कम्पांउडर जिनको डा० स्प्रासन ने इसी कार्य्य के लिये नियुक्त किया था उस को इस प्रकार क्लोरो फार्म देने लगे कि उस को होश न आवे जिस में उसको असाध्य पीड़ा होती थी। मुझको यह पश्चात्ताप रहा कि सरस्वती को कसौली न भेज सका, यद्यपि कुछ वर्ष पीछे मेरा एक भतीजा, (ला० बालमुकन्द का ज्येष्ठ पुत्र) कृष्णास्वरूप जिसको पागल कुत्ते ने काटा था और कसौली

भेज कर चिकित्सा हो चुकी थी तो भी कुछ समय पीछे रोग होकर उसकी मृत्यु हो गई ।।

अ० २६–मेरा दूसरा विवाह—मेरी आयु उस समय २८ वर्ष की थी। मुझ को दूसरा विवाह करने में संकोच था। परन्तु अपनी माता के अनुरोध व आग्रह से मैंने स्वीकार कर लिया। सं० १९५७ (सन् १९०० ई०) में मेरा विवाह श्रीमती प्रेमदेवी के साथ होगया। उनसे मेरे ३ पुत्र (कान्तिस्वरूप जो जयपुर में कुछ व्यवसाय करते हैं, डा० प्रकाश स्वरूप M. B. B. S. जो जयपुर में डाक्टरी की प्रैकृटिस करते हैं और जगदीश स्वरूप जो Hydro-Electric विभाग में एक्जीक्यूटिव इंजिनियर हैं) और एक कन्या (श्रीमती सुशीला देवी जो डा० रघुवंश स्वरूप रस्तोगी होमियोपैथ की सहधार्मिणी हैं), उत्पन्न हुए।

यदि मैं दूसरा विवाह न करता तो शायद मेरे जीवन की धारा कुछ भिन्न ही होती। परन्तु विना विवाह के पूर्ण ब्रह्मचर्य पूर्वक जीवन निर्वाह कर सकता था यह एक जटिल प्रश्न था।

अ० २७–रोग और अवकाश—मिर्जापुर जाने पर मेरा संग्रहणी रोग जाता रहा था और अन्य रोग भी दब गये थे, परन्तु एक वर्ष पीछे खाँसी और लघुज्वर दोबारा रहने लगे। डाक्टर ने फिर फेफडे में विकार बतलाया। मैं ३ मास का अवकाश लेकर इलाजके लिये मेरठ रहा। अवकाश लेने से मेरा स्वास्थ्य सुधरगया। उसके अन्त में डाक्टर की सलाह पर सरकार ने मेरी नियुक्ति सं० १९५७ में गढ़वाल में करदी जो एक पहाड़ी जिला है और

जिसकी आवहवा अच्छी मानी जाती है।

अ० २८—गढ़वाल में नियुक्ति—गढ़वाल जिले के ३ विभाग Subdivision हैं जिनके अलवा २ मुख्य स्थान है। हर विभाग में एक डि० क० रहता है जो हाकिम इलाका कहलाता है और उस विभाग का सब फौजदारी कलक्टरी व दीवानी का काम करता है। मेरी नियुक्ति पहले उत्तरीय विभाग में हुई जिस में श्री बदरीनाथ श्री केदारनाथ आदि प्रसिद्ध तीर्थ और उत्तर गंगा आदि अनेक अन्य तीर्थ स्थित हैं। इस का मुख्य स्थान चमोली है जो बदरीनाथ से लगभग ५० मील नीचे अलकनन्दा के किनारे पर है।

मेरे जाने से एक वर्ष पूर्व अर्थात् सं० १९५६ में चमोली से कुछ मील ऊपर गोहना झील में पहाड़ गिरकर पानी रुक जाने से और फिर उसके हटाने से एक भयंकर बाढ़ आई थी जो (Gohna Flood) के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस बाढ़ से चमोली के नीचे तीर्थ यात्रा की सब सड़कें व पुल, धर्मशाला, व दूकानें बह गईं। इसका असर हरद्वार तक पहुँचा। इन सड़कों व पुल व धर्मशाला आदि को दोबारा बनवाने या मरम्मत कराने का बड़ा भारी काम स्थानीय अधिकारियों को करना था। मुझको "काली कमली वाले" सुप्रसिद्ध क्षेत्र के अध्यक्ष स्व० श्री रामनाथ जी से इस कार्य में बहुत सहायता व सहयोग मिला। उनके द्वारा इन कार्यों के लिये बहुत धन मारवाड़ी तथा अन्य सेठों से संग्रह हुआ, जिसके द्वारा ऊपर लिखे तीर्थों के सड़क व पुल आदि का फिर उद्धार होगया।

अ० २९–श्री बदरीनाथ व श्री केदारनाथ की यात्रा—इस विशेष कार्य्य के अलावा श्री बदरीनाथ व श्री केदारनाथ की यात्रा का प्रबन्ध करना चमोली के डिप्टी कलक्टर का मुख्य कार्य्य है। इसके लिये दोनों तीर्थों का दौरा करना आवश्यक था। मेरे माता पिता व स्त्री तथा पुत्र ज्योतिस्वरूप व शान्तिस्वरूप (जिनकी आयु उस समय ८ व ६ वर्ष की थी) व मेरी कन्या सरस्वती जो ६ वर्ष की थी दौरे में मेरे साथ रहे, और इस प्रकार उन सबको इन प्रसिद्ध तीर्थों की यात्रा करने का अवसर मिल गया। ये यात्रा ज्येष्ठ व आषाढ़ मास में हुई जो उन ठंढे स्थानों के लिये बहुत अनुकूल समय था। बदरीनाथ की ऊँचाई दस हज़ार और केदारनाथ की १२ हज़ार फिट है। दोनों स्थानों पर उस समय भी बहुत बर्फ रहता है, केदारनाथ का तो मन्दिर भी उस समय तक बर्फ से ढका रहता है। श्रावण व भाद्रपद में बर्फ गल जाता है, यह बड़े आनन्द की यात्रा थी। साधारण दीन या स्त्रियों के लिये पहाड़ों पर पैदल चलने व भोजन वस्तु का सुप्रबन्ध न रहने से उस समय कठिन मानी जाती थी, परन्तु अब सड़कों में बहुत सुधार हो गया है। पानी व धर्मशाला स्थान स्थान पर बन गये हैं। कुछ अस्पताल भी बन गये हैं। इसिलिये यात्रा की कठिनाइयां बहुत कम होगई हैं, सहस्रों मनुष्य इन तीर्थों की यात्रा करते हैं। तीर्थों की पवित्रता का कारण एक शास्त्र में इस प्रकार बतलाया है—

"प्रभावाद्द्भुताद् भूमेः सलिलस्य च तेजसः
(परि) ग्रहान् मुनीनांऽचतीर्थानां पुण्यता स्मृता ॥

(अर्थात्) भूमि जल व अग्नि व तेज के अद्भुत प्रभाव से और मुनियों के निवास करने से तीर्थों की पवित्रता मानी गई है। ब्रिटिश शासन के समय में वहुत से अंगरेज़ गर्मी की ऋतु में मंसूरी नैनीताल व शिमला आदि पर्वती स्थानों में जाकर रहते थे, आनन्द प्रमोद करते थे और स्वास्थ्य लाभ करते थे। इसी प्रकार हमारे पूर्वजों ने प्राचीन समय में वदरीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्तरी, जमनोत्तरी, आदि स्थानों को गर्मी के ऋतु में रहने के लिये चुना था। वहुत से ऋषि मुनि भी यहाँ आकर निवास करते थे। साधारण मनुष्य यहाँ आकर स्वास्थ्य लाभ करते थे और ऋषि मुनियों के उपदेश से भी लाभ उठाते थे। इसी कारण यह प्रदेश अब भी तपोभूमि कहलाता है और सहस्रों मनुष्य गरमी के ऋतु में वहाँ की यात्रा करते हैं।

अ० ३०—लैन्सडौन की नियुक्ति—चमोली के बाद मैं लगभग ६ मास के लिये मध्य विभाग में रहा जिसका मुख्यस्थान पौड़ी है और वहीं जिलेका भी मुख्यस्थान है। सं० १९६० में मेरी नियुक्ति मेरी ही इच्छा पर दक्षिण विभाग में हो गई जिसका मुख्य स्थान लैंसडौन है। यह मुझको वहुत अनुकूल था क्योंकि वह मैदान Plains से मिला हुआ है, उस के एक कसवे कोटा द्वारा में रेल भी आचुकी है। इस से मैं वहाँ से सुगमता पूर्वक अपने घर मेरठ अथवा अन्य स्थानों को आवश्यकतानुसार जा सकता था॥

अ० ३१–श्री ज्वालाप्रसाद जी से परिचय–इसी समय स्व० श्री ज्वालाप्रसाद जी ऐसिस्टेंट इंजिनियर नहर के काम पर नियुक्त होकर आये। वे दृढ़ आर्य थे और बड़े सच्चे सुशील और योग्य सज्जन थे। उनके साथ यही मेरा पहला परिचय हुआ जो मित्रता के रूप में बढ़ता गया और जीवन पर्य्यन्त रहा जैसा आगे विदित होगा। (देखो अनुच्छेद ४७)

अ० ३२–कांगड़ी गुरुकुल की स्थापना–इसके पहले वर्ष महात्मा मुंशीराम जी ने कांगड़ी गुरुकुल की स्थापना की थी। कांगड़ी बिजनौर के जिले में गंगा के किनारे हरद्वार कनखल के सामने एक छोटासा ग्राम था। ज़ियादा भूमि में जंगल था। उनको ग्राम के स्वामी स्व० श्री अमरसिंह ने गुरुकुल के लिये दान रूप से दे दिया था। सं० १९६० में गुरुकुल का पहला वार्षिकोत्सव हुआ। कांगडी से २ मील की दूरी पर चीला नामक स्थान लैंसडौन इलाके में एक पड़ाव है, मैं दौरा करता हुआ चीला गया और वहाँ से कांगड़ी पहुँचा। वहाँ के अपूर्व उत्साह और श्रद्धा पूर्ण वातावरण को देख कर मैं चकित रह गया। वास्तव में गुरुकुल की स्थापना जैसी आर्यसमाज में एक अपूर्व बात थी, गुरुकुल का उत्सव भी वैसा ही एक अपूर्व दृश्य था और यह पहला ही उत्सव था। मेरे पुराने मित्र श्री नारायण दास जी जो उस समय जालंधर छावनी में वकालत करते थे और वहाँ के आर्य-समाज के प्रधान थे मुझ से वहाँ पर मिले और मेरे साथ ही ठहरे।

उसके बाद मैं ३ वर्ष तक लैंसडौन में हाकिम इलाका S D.O. रहा। हर वर्ष कांगड़ी के उत्सव में उसी प्रकार आता रहा और सुगमता पूर्वक उत्सव में भाग लेने का लाभ उठाता रहा।

अ० ३३—CASTE SYSTEM पुस्तक का प्रकाशन—सं० १९५७ अर्थात सन् १९०० में मेरी अंगरेजी पुस्तक Caste System आर्य प्रतिनिधि सभा युक्त प्रांत की ओर से प्रकाशित हुई। उस में वर्तमान जन्म गत जाति भेद का खण्डन है और वैदिक वर्ण व्यवस्था का मंडन है। इस की सामग्री मैं बहुत कुछ मेरठ रहते हुए ही संग्रह कर चुका था। इस पुस्तक के कई संस्करण अंगरेजी में छपे। अन्तिम संस्करण आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब की ओर से कैलिकट (मलाबार) में छपा था। उसके अनुवाद हिन्दी, मरहठी, गुजराती, मलयालम आदि भाषाओं में भी हुए। गुजराती भाषा में यह अनुवाद मुझ को सूचना दिये बिना छपा, उसमें बहुत सी अशुद्धियाँ थीं। मेरे एक मित्र ने ध्यान दिलाया। दूसरा अनुवाद उनकी देखरेख में ही कर दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ। हिन्दी संस्करण कई कारणों से दोबारा न छप सका था। उसकी माँग बराबर रही। अब सं० २००६ में छप कर प्रकाशित हुआ। इस संस्करण में मैंने भारत का नवविधान हो जाने से आवश्यक संशोधन व परिवर्धन करके उसको समयानुकूल पूर्ण कर दिया है।

अ० ३४—श्री राजा साहब टिहरी—RAJA SIR KIRTI SAH G.C.S.I. सं. १९६० में Sir James La Tauecha श्रीमान्

सर जेम्स ला टूश युक्तप्रान्त के गवर्नर दौरे पर गढ़वाल जिले में आये। टिहरी गढ़वाल राज्य बिलकुल मिला हुआ है। टिहरी के महाराजा साहब स्व० सर कीर्ति शाह गवर्नर साहब से भेंट करने के लिये पौड़ी पधारे। मैंने सरकारी तौर पर उनका आतिथ्य सत्कार किया और एक प्रति Caste System पुस्तक को जो हाल ही में छपी थी भेंट की। कुछ समय पीछे पत्र द्वारा महाराजा साहब ने पुस्तक की प्रशंसा की। श्री महाराज को आर्यसमाज के विचारों से कुछ सहानुभूति थी। इस परिचय के बाद उनसे पत्र व्यवहार जारी रहा। यही कारण था कि उनकी मृत्यु के बाद उनके सुपुत्र श्री महाराजा स्व० नरेन्द्र शाह जी नें सन् १९२२ ई० में मुझ को चीफ जज के पद पर नियुक्त कर के बुलाया जिसका वर्णन आगे आवेगा। (देखो अनुच्छेद ६७।)

गढ़वाल में रहने का फल--गढ़वाल के जल-वायु व रहन सहन से मेरा स्वास्थ्य सुधर गया। इस जिले में डिप्टी कलक्टर को माल व फौजदारी के सिवाय दीवानी मुकदमें सुनने के भी अधिकार होते हैं और सिविल जंगलात Civil Forest आदि के भी अधिकार थे। इन कारणों से और निरन्तर दौरा करने से प्रजा से अधिक संपर्क होकर जनता की अधिक सेवा करने के अवसर मिलते हैं। गढ़वाल की प्रजा ने मेरी सेवाओं का अच्छा मान किया, और सरकार ने भी मेरे कार्य की प्रशंसा की। मुझे मालूम हुआ है कि वहाँ की ख्याति के कारण ही श्री म० कीर्त्ति शाह जी ने मेरीं सेवाओं को युक्तप्रांत की सरकार से Loan के रूप से माँगने

का विचार किया था। परन्तु उनका शीघ्र ही ३४ वर्ष की आयु में असामयिक स्वर्गवास हो गया और टिहरी गढ़वाल राज्य के शासन के लिये कौंसल आफ रीजेंसी नियत हुई। उसी पूर्व परिचय और पत्र व्यवहार के परिणाम रूप, जैसा ऊपर कहा है, उनके सुपुत्र महाराजा स्व० नरेन्द्र शाह जी ने सं० १९८९ में जब कि मैं सरकारी नौकरी से अवकाश व पेंशन प्राप्त कर चुका था मुझ को चीफ जज के पद पर नियुक्त करके बुलवाया।

अ० ३५–श्री लाला लाजपतराय के साथ लंका की यात्रा–सं० १९६२ (सन १९०५ ई०) में मैं दो मास का अवकाश लेकर पहले बम्बई गया। वहाँ पर कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन था, आर्यसमाज बम्बई का उत्सव भी था। उस उत्सव में मैंने पहली बार "वेद सब धर्मों का मूल है"—इस विषय पर व्याख्यान दिया। मैं उस समय इस विषय पर Fountain Head of Religion नामक पुस्तक तय्यार कर रहा था। व्याख्यान का बम्बई की जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा। कुछ गण्यमान्य पारसी सज्जन मुझ से आकर मिले और यह इच्छा प्रकट की कि मैं उस व्याख्यान को दोबारा अंगरेजी भाषा में दूं तो बहुत से पारसी लोग आकर सुनेंगे क्योंकि उस व्याख्यान में पारसी मत का विस्तार के साथ वर्णन था। परन्तु मैं स्व० श्री ला० लाजपतराय के साथ जहाज द्वारा लंका की यात्रा का प्रबन्ध और तिथि नियत कर चुका था।

जनवरी १९०६ में मैं और ला० लाजपतराय एक Coasting Steamer जहाज में जो मार्ग में ठहरता हुआ जाने को था चल

दिये। मार्ग में कंकणादी मंगलौर व माही (जो फ्रांसीसी राज्य का है) देखे। कंकणादी में हम दोनों एक हिन्दू मन्दिर देखने को गये पर उसके भीतर जाने में इसलिये असफल रहे कि पुजारी को यह विश्वास नहीं दिला सके कि हम शूद्र नहीं हैं। मंगलौर में हमारे जहाज के एक साथी यात्री ने जो पारसी थे अपने ब्राह्मण नौकर को साथ भेजा। उसकी सहायता से बड़ी कठिनाई से एक मन्दिर में प्रवेश करके उसको देख सके। इस प्रदेश में हिन्दुओं में केवल ब्राह्मण व शूद्र दो जातियां हैं, इसलिये जो ब्राह्मण न हो वह शूद्र ही समझा जाता है, और शूद्रों को उस समय मन्दिरों के भीतर जाना वर्जित था।

अ० ३६ लंका की सैर—कोलम्बो पहुँचकर हम दोनों ने वहां के बौद्ध मन्दिरों के दर्शन किये और बौद्ध भिक्षुओं व नेताओं से भेंट की। वहां से चलकर लंका का प्रमुख स्थान कैंडी देखा जहां बौद्धों का प्रसिद्ध मन्दिर Tooth Temple है जिसमें म० बुद्ध का असली दाँत सोने चाँदी हीरे आदि सात धातुओं की डिबिया में सुरक्षित रक्खा हुआ है, और जिसका बड़ा माहात्म्य माना जाता है। फिर अनुराधपुरा गये जहाँ सम्राट अशोक के पुत्र महेन्द्र का लंका के राजा तिष्य ने स्वागत किया था और बोधि वृक्ष की स्थापना की थी। महेन्द्र ही अशोक की आज्ञा से बुद्ध गया से बोधि वृक्ष की एक शाखा और म० बुद्ध का असली दाँत लेकर एक भिक्षु के रूप में सिंहल द्वीप गये थे। अशोक की पुत्री भी जो एक भिक्षुणी थी (नाम संघमित्ता था) सिंहल द्वीप गई थी और वहां उसने भिक्षुणी विहार स्थापित किया था।

लंका में हम दोनों ने और भी प्रसिद्ध स्थान देखे जिनमें मुख्य स्थान निउरा एलिया Neura Eliya है जो एक पर्वत पर गवर्नर का निवास स्थान था और उसके पास ही "सीता एलिया" नामक वह स्थान है जहाँ रावण का सीता को बन्दी बनाकर रखना कहा जाता है। उस समय उस स्थान पर एक छोटा सा पुराना टूटा हुआ मन्दिर था जिसमें सीता की एक टूटी सी मूर्ति और हनुमान जी की मूर्ति थी। लंका की यात्रा समाप्त करके जब हम फिर कोलम्बो पहुँचे तो वहाँ के कुछ धनी-मानी हिन्दू सज्जनों से वार्तालाप होने पर मालूम हुआ था कि लंका निवासी हिन्दुओं का विचार था कि "सीता एलिया" स्थान पर एक अच्छा मन्दिर बनवा देवें। पर मालूम नहीं कि यह विचार कार्य रूप में परिणत हुआ या नहीं। लंका में श्री लाजपतराय की और मेरी पूरी यात्रा में कुल १५ दिन व्यतीत हुए थे।

अ० ३७ **यात्रा की समाप्ति**—कोलम्बो से चलकर हम दोनों मद्रास होते हुए कलकत्ता गये। मद्रास में हम वहाँ के प्रमुख दैनिक पत्र "हिन्दू" के सुप्रसिद्ध सम्पादक स्व० श्रीमान् अय्यर महोदय के अतिथि रहे जो कांग्रेस के एक मुख्य नेता थे और जिनका श्री लाजपतराय जी से पूर्व परिचय था। कलकत्ता से मैं श्री लाजपतरायजी का साथ छोड़कर मेरठ चला गया क्योंकि मेरा २ मास का अवकाश समाप्त होने को था। मेरठ में आर्य्य भाइयों की इच्छानुसार मैंने सिटी तथा छावनी दोनों आर्यसमाजों में अपनी यात्रा और विशेष कर दक्षिण में शूद्रों की दुर्व्यवस्था पर भाषण किये।

श्री लाजपतराय जी ने अपनी आत्म जीवनी में इस यात्रा का वर्णन किया है और मेरे साथ रहने का भी उल्लेख किया है। ऐसे आदर्श नेता व देशभक्त के साथ यात्रा करना वास्तव में मेरा परम सौभाग्य था।

अ० (३८) गढ़वाल से मेरी गोरखपुर की बदली—गढ़वाल लौटने के कुछ मास पीछे सन् १९०६ में मेरी तबदीली गोरखपुर जिले को हो गई। गढ़वाल व कमायूं के अधिकारियों ने मेरी ५ वर्ष की सेवाओं का अच्छा मान किया और वहाँ की जनता ने कृतज्ञतापूर्वक और भी अधिक आदर किया।

गोरखपुर जिले में मैं लगभग ८ वर्ष रहा, पहले ४ वर्ष गोरखपुर ही में और शेष ४ वर्ष देवरिया सबडिवीजन में। मेरे पुत्र कान्तिस्वरूप और पुत्री सुशीला का जन्म गोरखपुर में हुआ और प्रकाशस्वरूप व जगदीशस्वरूप का जन्म देवरिया में हुआ था।

अ० (३९) FOUNTAINHEAD OF RELIGION पुस्तक का प्रकाशन—जैसा पहले लिखा जा चुका है इस पुस्तक Fountainhead of Religion की सब सामग्री मैं मेरठ ही में जब मैं मेरठ कालिज में प्रोफेसर था संग्रह कर चुका था, और कुछ भाग पुस्तक का लिखा भी जा चुका था। उसकी पूर्त्ति होने पर पहले वह लेखों के रूप में गुरुकुल कांगड़ी के प्रसिद्ध मासिक पत्र "वैदिक मैगेजीन" में जिसके सुयोग्य सम्पादक मेरे परममित्र श्री रामदेव जी थे छपता रहा। पीछे सन १९०६ में उसको आर्य

प्रतिनिध सभा युक्तप्रांत ने पुस्तक रूप में छपवाया। पुस्तक के छपवाने में मेरे सुयोग्य मित्र श्री रतनलाल जी M A., L.L.B., ने जो उस समय मेरठ में ऐडवोकेट थे और पीछे युक्तप्रान्त में जज व लीगल रीमेम्बरेन्सर के पद पर रहे, बहुत परिश्रम किया था जिसके लिये मैं उनका अभारी हूँ। सन १९११ में पुस्तक का दूसरा संस्करण, १९१६ में तीसरा संस्करण और सन् १९२३ में चौथासंस्करण छपा तीसरे व चौथे संस्करण के अवसर पर आर्य प्रतिनिधि सभा की आज्ञा से (जिसके द्वारा पुस्तक का प्रकाशन होता था) यह पुस्तक कालिजों के उन विद्यार्थियों को जिन्होंने बी० ए० की डिगरी प्राप्त की थी उपहार रूप से दी गई थी जैसा कि बाइबिल प्रचारक सोसाइठी की ओर से बाइबिल की पुस्तक दी जाती है। इसके अतिरिक्त स्व० श्री केशवदेव ज्ञानीजी के उद्योग से उसके कई संस्करण मद्रास में छपे। अन्तिम संस्करण मद्रास से ही निकला है जो युद्ध के समय में कागज की कमी के कारण संक्षिप्त रूप में छपा था। अब पूर्णरूप में उस का नया संस्करण आर्य साहित्य मंडल अजमेर की ओर से छप रहा है।

इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद "आर्यमित्र" के पूर्व सम्पादक श्री पं० हरिशंकर शर्मा ने किया जो पहले सभा की ओर से और अब पंजाब के प्रसिद्ध पुस्तक प्रकाशक श्री राजपाल ऐंड सन्स की ओर से प्रकाशित हो रहा है। चौथा संस्करण हाल ही में छपा है।

इस पुस्तक के गुजराती, महरठी तथा कुछ दक्षिण भाषाओं में भी अनुवाद हो चुके हैं और प्रकाशित होते रहते हैं। तामिल भाषा का अनुवाद मदरास आर्य समाज के मन्त्री श्रीनारायण रावजी की अध्यक्षता में हो रहा है।

अ० (४०) R. A. S. **अर्थात् रोयल एशियाटिक सोसायटी का सदस्य निर्वाचित होना।** १६ जून सन् १६०६ को मैं लन्दन की रोयल एशियाटिक सोसायटी Royal Asiatic Society का सदस्य निर्वाचित हुआ। इस सोसायटी का मुख्य उद्देश्य संस्कृत तथा एशिया की अन्य भाषाओं और उनके प्राचीन साहित्यों के संबंध में खोज और उनकी उन्नति करना है।

अ० (४१) **देवरिया सब डिविजन में नियुक्ति तथा देवरिया की नियुक्ति के पश्चात**—सं० १६६७ में मेरी नियुक्ति देवरिया सब डिविजन में हुई। यह हाटा व देवरिया दो बड़ी तहसीलों का एक बड़ा इलाका था जो पीछे गोरखपुर से काट कर पृथक् ज़िला बन गया है। उस समय इसकी आबादी २० लाख थी और हाकिम इलाका को माल व फौजदारी के वे सब अधिकार प्राप्त थे जो जिले के कलक्टर व मजिस्ट्रेट को होते हैं, और उसके अधीन दो अन्य डिप्टी कलक्टर रहते थे, और चेयरमैन डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के भी सब अधिकार प्राप्त थे। इन विशेष अधिकारों के कारण हाकिम इलाका देवरिया का स्थान I.C S. (इंडियन सिविल सर्विस) के अफसर के लिए सुरक्षित रहता

था। उस स्थान पर एक डिप्टी कलक्टर की नियुक्ति विशेष अवस्था में और विशेष योग्यता के कारण होती थी।

मैं देवरिया में ४ वर्ष उस पद पर रहा। देवरिया में एक अच्छा हाई स्कूल था, पर किराये के मकान में होता था। उसके लिये एक बड़े भवन की आवश्यकता थी। उन दिनों प्रजा से युद्ध के लिये चन्दा वसूल करना था। मैंने गोरखपुर के कलक्टर श्री होप सिम्पसन Mr. J. Hope Simpson को जो एक बड़े योग्य और विचारशील हाकिम थे और मुझ पर विश्वास करते थे, इस बात पर राजी कर लिया कि इस इलाके से जितना चन्दा वसूल हो वह सब स्कूल भवन बनाने में लगाया जाय। प्रजा ने बड़े उत्साह से चन्दा दिया और लगभग ४० हजार चन्दा इकट्ठा हो गया जिस से एक विशाल भवन स्कूल के लिए बन गया।

"कलकत्ते संस्कृत ऐसोसियेशन" की **तीर्थ परीक्षा** प्रसिद्ध है जो न्याय, वेदान्त, सांख्य व्याकरण, वेद आदि विषयों में होती है। युक्त प्रान्त के, विशेषकर उसके पूर्वी भाग के (गोरखपुर बलिया वस्ती आदि जिलों के) बहुत से युवक उन परीक्षाओं के लिये कलकत्ते या पटना जाया करते थे। देवरिया बाजार के कुछ सम्पन्न मारवाड़ियों के सहयोग से जिन्होंने ऐसे परीक्षार्थियों को भोजन देना स्वीकार किया, देवरिया में एक केन्द्र स्थापित कराया गया। स्कूल के हेड मास्टर ने रेल के नियमों के अनुसार बाहर के आने वाले परीक्षार्थियों के लिये रियायती टिकट (जो लगभग आधे किराये पर मिलते हैं) प्राप्त करके उनके पास

भिजवाने का प्रबन्ध कर दिया। इन सुविधाओं के कारण देवरिया कलकत्ते की **तीर्थ परीक्षाओं** का एक अच्छा केन्द्र होगया।

ऊपर लिखे विशेष उपयोगी कार्यों तथा अन्य प्रकार से देवरिया सब डिविजन की जनता ने मेरी सेवाओं का बहुत मान किया। सन् १६२० में जब मैं सरकारी नौकरी से अवकाश व पेंशन प्राप्त करके अपने छोटे भाई स्वर्गीय प्यारेलाल जी से मिलने के लिये बस्ती गया जहाँ वे सब जज थे तो देवरिया के कुछ प्रमुख लोगों ने आग्रह पूर्वक यह माँग की कि मैं एक दिन के लिये देवरिया भी जाऊँ। मैंने स्वीकार किया। देवरिया जाने पर वहाँ की जनता ने मेरा अपूर्व स्वागत किया और सायंकाल के समय सहस्रों की संख्या में ग्रामीण लोग मुझ से मिलने के लिये आये। काशी के प्रसिद्ध आर्य नेता स्वर्गीय श्री रामनारायण मिश्र उस समय देवरिया हाई स्कूल के हेड मास्टर थे, उनके द्वारा देवरिया की जनता ने पूर्वोक्त निमंत्रण मेरे पास भेजा था।

अ० (४२) कानपुर सोशल कानफरेंस के सभापति का कार्य—सं० १९६८ई० में कानपुर में पोलीटिकल व सोशल कान्फरेंस के अधिवेशन हुए। सोशल कान्फरेंस के सभापति पद के लिये मैं निमन्त्रित किया गया था। पोलिटिकल कान्फरेन्स के सभापति श्रीमान् एस. सिंह S. Singh सम्पादक **कायस्थ समाचार** व **हिन्दुस्तान रिविव** थे जो भारत वासियों में सबसे प्राचीन पारलीमेंट के सदस्य होने के कारण सन् १९४८ में नई Constituent Assembly **भारत विधान सभा** के स्थापित होने पर

उसके सब से पहले सभापति चुने गये थे। स्वागत कमेटी के अध्यक्ष कानपुर के प्रसिद्ध नेता रा० ब० आनन्द स्वरूप वकील थे। मैं अपना भाषण अंग्रेजी में छपवा कर लेगया था जैसा कि उस समय तक दस्तूर था। उससे पहले वर्ष "लीडर" Leader के सुप्रसिद्ध सम्पादक और योग्य नेता श्री चिन्ता मणि C. Y. Chintamani जी ने सभापति पद का कार्य किया था। वे, बाबू गंगा प्रसाद वर्मा सम्पादक "एडवोकेट" लखनऊ, तथा संयुक्त प्रान्त के अन्य गण्य मान्य नेता उपस्थित थे। ज्यों ही मैं अपना भाषण अंग्रेजी में आरंभ करने को था जनता की ओर से "हिन्दी, हिन्दी" की आवाज उठी। स्वागताध्यक्ष तथा श्री चिन्तामणि ने मेरी ओर उत्सुकता की दृष्टि से देखा। मैंने कहा कि मुझ को हिन्दी में भाषण करने में कुछ भी आपत्ति नहीं। जनता ने इस पर करतल ध्वनि की। मैंने निसंकोच हिन्दी में अपना व्याख्यान दिया, जो सफलता पूर्वक हुआ। मुझ को उसमें कुछ भी कठिनाई न हुई क्यों कि व्याख्यान अंग्रेजी में लिखा व छपा था, परन्तु विचार मेरे ही थे, और उनको अपनी मातृ भाषा में प्रकट करना और भी सरल था। किन्तु श्री चिन्ता मणि आदि को इस पर बड़ा आश्चर्य्य हुआ। उन्होंने मुझको हृदय से साधुवाद दिया और दूसरे दिन अपने "लीडर" पत्र में मेरे भाषण की ओर वक्तृता शक्ति की बड़ी प्रशंसा की क्यों कि व्याख्यान पहले से हिन्दी में लिखा नहीं गया था।

एडवोकेट पत्र में भी योग्य सम्पादक श्री गंगा प्रसाद वर्मा ने इसी प्रकार का नोट मेरे व्याख्यान की प्रशंसा में प्रकाशित किया।

अ० (४३) देवरिया में श्री डलाई लामा व उनके मन्त्रि वर्ग का स्वागत—सं १९६८ में चीन और तिब्बत के बीच युद्ध छिड़ा हुआ था। इसलिये तिब्बत के शासक वर्ग श्री डलाई लामा और उनके मन्त्री गण ने तिब्बत से भाग कर अंग्रेजी सरकार की शरण ली और भारत में आगये थे। डलाई लामा श्रीं गौतम बुद्ध के अवतार माने जाते हैं। स्वयं महात्मा बुद्ध के आदेश से नीचे लिखे ४ तीर्थों की यात्रा करने का बौद्धों के लिये बड़ा माहात्म्य माना जाता है। —

(१)**लुम्बिनीग्राम**(गोरखपुर वस्ती की सरहद के समीप नैपाल राज्य के भीतर), जहाँ बुद्ध का जन्म हुआ था। (२) बुद्ध गया जहाँ कई वर्ष की योग साधना की समाप्ति पर उनको सिद्धि प्राप्त हुई थी और वे "बुद्ध" हुए। (३) **सारनाथ** (काशी के समीप) जहाँ सिद्धि प्राप्त करके महात्मा बुद्ध ने अपना सबसे पहला उपदेश दिया और "धर्म चक्र" का संचालन किया। (४) कुशी नगर (गोरखपुर के जिले में कसिया स्थान जहाँ उन्होंने महापरि निर्वाण पद प्राप्त किया और उनके शरीर की अन्त्येष्टि क्रिया हुई॥

कसिया जहाँ यह चौथा तीर्थ है देवरिया से २७ मील दूरी पर है, जहाँ गौतम बुद्ध की निर्वाण अवस्था की पत्थर की विशाल मूर्ति लेटे हुए दशा में है।

श्री डलाई लामा तिब्बत के केवल राजा ही न थे, वहाँ के धर्माध्यक्ष भी थे, और गौतम बुद्ध के अवतार माने जाते थे, और उन्होंने अपने मन्त्रिवर्ग सहित पूर्वोक्त चारों तीर्थों की यात्रा करने

की इच्छा प्रकट की थी। भारत सरकारने उसके लिये आवश्यक प्रबन्ध कर दिया। कसिया यां कुशीनगर की यात्रा का प्रबन्ध मेरे सपुर्द हुआ। मैंने श्री डलाई लामा और उनके मन्त्रिगण का देवरिया में उचित स्वागत किया और कसिया जाने के लिये सवारी आदि का प्रबन्ध कर दिया। एक सरकारी पुलिस अफसर डिप्टी सुपरिंडेंट ग्रेड का जो शिकम देश का था, तिब्बत की भाषा जानता था, रक्षा के लिये सरकार की ओर से नियुक्त था और उनके दुभाषिये Interpreter का भी काम करता था।

मैं ने श्री डलाई लामा से भेट की। उन्होंने मेरे सिर पर हाथ रख कर आशीर्वाद के कुछ वाक्य कहे जिनका अर्थ दुभाषिये ने यह बतलाया कि "मेरा परम सौभाग्य था जो श्री डलाई लामा के दर्शन हुए और कि मेरी आयु १०८ वर्ष की होगी"। श्री डलाई लामा ने मुझको १ तिब्बत के सिक्के का रुपया, एक कम्बल, एक रेशम का रूमाल, व एक रूमाल में कुछ सूखे फूल व घिसे चन्दन की बटिया प्रसाद रूप से दिये, जिन को मैं ने बहुत वर्षों तक यादगार के रूप से रक्खा। रुपया शायद अब तक रक्खा है, अथवा एक चोरी में जाता रहा।

अ० (४४) Sir James Meston सर जेम्स मैस्टन से आर्य समाज के संबन्ध में वार्तालाप—सन् १९१३ फरवरी मास में युक्त प्रान्त के नये लेफ्टिनैंट गवर्नर सर जेम्स मेस्टन Sir James Meston गोरखपुर आये। अन्य डिप्टी कलक्टरों के साथ मैं भी इनसे मिला। देवरिया के सम्बन्ध में

(जो शीघ्र नया जिला बनने को था) संक्षेप से कुछ बातें करके मेरे साथ लग भग एक घंटे तक केवल **आर्य समाज** के विषय पर बड़े विस्तार मे बातचीत की। मुझसे कांगड़ी गुरुकुल का हाल पूछा और शीघ्र वहाँ जाने की इच्छा प्रकट की। ६ मार्च १६१३ को वास्तव में वहाँ पहुँच गये। इससे पहले किसी को यह मालूम न था कि सर जेम्स मेस्टन को आर्य समाज से सहानुभूति है। प्रत्युत उस से पूर्व सरकारी अफसरों की दृष्टि में साधारण तथा आर्य्यसमाज के समासद सरकार के विरोधी समझे जाते थे। चूंकि इनके गुरुकुल कांगडी जाने व आर्य समाज के नेताओं से मिलने का सूत्रपात एक प्रकार इसी वार्तालय से हुआ इसलिये मैं उस वार्तालाप को कुछ विस्तार के साथ लिखना उचित समझता हूँ—

(सरजेम्स मेस्टन) आप आर्य समाजी हैं ? (मैं) जी हाँ। मैं बालक पन से आर्य समाजी हूँ। मेरे पिता वा पितामह भी आर्य समाजी थे।

(सर जेम्स) कुछ सरकारी हाकिम समझते हैं कि आर्य-समाज एक राजनैतिक Political और सरकार से विरोध करने वाली संस्था है, पर मेरा ऐसा विचार नहीं हैं, मैं समझता हूँ कि आर्य समाज ने भारत में बहुत कुछ सामाजिक सुधार किया है।

(मैं) मुझको श्रीमान् के ऐसे सद् विचार जान कर बहुत प्रसन्नता हुई।

(सर जेम्स) परन्तु आर्य समाज में कुछ कुटिल विचारों के भी लोग हैं।

(मैं) कुछ ऐसे लोग होंगे, पर ऐसे लोग सभी जातियों व समूहों में होते हैं उदाहरणार्थ मुसलमानों में व ईसाइयों में भी।

(सर जेम्स) परन्तु यदि मुझको मालूम हो जाय कि मेरे चर्च में कोई कुटिल लोग हैं तो मैं उनके सुधार का यत्न करूँगा।

(मैं) हम लोग भी ऐसे लोगों को सुधारने का यत्न करते हैं। इसके बाद एक वर्ष पूर्व मैंने युक्तप्रान्त की आर्य्य प्रतिनिधि सभा में कुछ ऐसे प्रस्ताव रक्खे थे जिनका उद्देश्य प्रचारकों का सुधारना था और जो सभा से स्वीकृत हुए थे, उनका जिकर किया।

(सर जेम्स) मै ये बातें जान कर बहुत खुश हुआ।

इसके बाद **सर जेम्स मेस्टन ने** मुझसे युक्त प्रान्त के प्रमुख आर्य नेताओं के नाम पूँछे। मैंने स्व० पं० तुलसीराम स्वामी (जो उस समय सभा के प्रधान थे) स्व० श्री घासीराम जी, स्व० पं० भगवान् दीन जी, कानपुर निवासी, स्व० बा० आनन्द स्वरूप (जो उस समय तक राय बहादुर न थे, आदि सज्जनों के नाम बतलाये। सर जेम्स मेस्टन ने उनके पूरे पते नोट किये और कहा कि मैं शीघ्र इन सज्जनों से भेट करूँगा। मैंने उसी दिन की डाक से इन सब सज्जनों को इस बात की सूचना देदी। सर जेम्स उसके बाद थोड़े समय के भीतर ही उन सबसे मिले। उनके नाम नोट करने के बाद सर जेम्स मेस्टन ने गुरुकुल कांगडी और महात्मा मुंशीरामजी के विषय में कई प्रश्न किये और कहा कि वे शीघ्र ही गुरुकुल कांगड़ी जावेंगे। मैने उसी दिन इस विषय की सूचना का पत्र महात्मा मुन्शी रामजी को लिखा और यह सलाह दी कि वे

तुरन्त श्री सर जेम्स मेस्टन को गुरुकुल में स्वयं निमंत्रित कर। ४ या ५ दिन पीछे मुझको श्री महात्मा जी का पत्र मिला जिसमें लिखा था कि उन्होंने मेरी सलाह के अनुसार श्री सर जेम्स] मेस्टन को निमंत्रण पत्र लिखा पर दूसरे ही दिन उनका पत्र आगया कि वे ६ मई १९१३ को गुरुकुल पहुँचेंगे। गुरुकुल जाने पर सर जेम्स मेस्टन के विचार आर्यसमाज के विषय में अच्छी तरह साधारण जनता को प्रकट हो गये। उस समय यह एक बड़ी आश्चर्य जनक बात थी क्योंकि उस समय तक सरकारी अफसरों की मनोवृत्ति आर्य समाज के विरुद्ध ही समझी जाती थी। सर जेम्स मेस्टन ने भी अपने ऐसे विचार पहली बार उसी समय मेरी वार्त्तालाप में प्रकट किये थे। इसका कारण शायद यह रहा हो (जैसा अनुच्छेद २४ में लिखा जा चुका है, कि सरकारी दफ्तरों में मेरे नाम के सामने 'आर्य्यसमाजी" शब्द लिखा हुआ था। इसके बाद युक्तप्रान्त की आर्य प्रतिनिधि सभा ने गुरुकुल वृन्दावन की आधार शिला रखने के लिये उक्त श्रीमान् को निमंत्रित किया। और ८ अगस्त १९१३ को श्रीमान् ने गुरुकुल की आधारशिला रक्खी।

अ० ४५—बुंदेलखंड की रियासतों में विशेष कार्य Special Duty पर नियुक्ति—सं० १९७१ (सन् १९१४ ई०) में मेरी बदली गोरखपुर से जिला आजमगढ़ को हुई, परन्तु मैं उस जिले में केवल ४ मास ही रहा फिर मुझको जिला हमीरपुर विशेष कार्य पर Special Officer on Land Acqui-

sition के तौर पर) जाना पड़ा, क्योंकि युक्त प्रान्त की सरकार हमीरपुर जिले की आवपाशी के लिये बुन्देलखण्ड की कई रियासतों (पन्ना, छतरपुर, ओर्छा, चरखारी आदि) की जमीन लेकर एक बडा बन्द कुर्रा स्थान के समीप तय्यार कराना चाहती थी। मेरा कार्य इन रियासतों की उस ज़मीन की पैमाइश करवाके उसके मूल्य का तखमीना करना था, पैमाइश आदि के काम को अधिकांश में अमीन व सर्वेयर करते थे मेरा काम उनकी निगरानी करना था। इसके लिये मुझ को इन रियासतों की सरहद के अन्दर दौरा करना होता था अथवा नौ गांव स्थान पर रहना होता था, जो बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल अफसर साहब का निवास स्थान था। मेरा मुख्य काम इन रियासतों के शासकों (राजा महाराजाओं) तथा उनके प्रमुख अधिकारियों (दीवान आदि) से मिलकर भूमि के मूल्य के विषय में वार्तालाप करना था, इसी कारण उस पद पर एक उच्च या अनुभवी अफसर की नियुक्ति आवश्यक समझी गई थी। तो भी काम हलका था। मैं उस कार्य पर दो वर्ष (सन् १६१४ से १६१६ तक) रहा मुझको अपनी सरकारी नौकरी में कभी ऐसी फुर्सत नही मिली जैसी कि इस अर्से में मिली। मैंने उसको स्वाध्याय में लगाया जिसकी मुझको सदा बड़ी चाह रहा करती थी।

अ० ४६—आगरे की तब्दीली—मुझ को अपनी नौकरी में पूर्वी ज़िले में बहुत रहना पड़ा। मेरी इच्छा थी कि मुझ को कोई पश्चिमी ज़िला मिले। इस लिये बुन्देलखण्ड के विशेष कार्य्य

(Special Duty) की समाप्ति पर मेरी नियुक्ति मेरी इच्छा के अनुसार आगरे को हो गई जहाँ मैं २ वर्ष तक रहा। पहले वर्ष मैं सिटी मैजिस्ट्रेट का काम करता था दूसरे वर्ष बाह व ऐतमादपुर तहसीलों के हाकिम इलाका का काम किया। जिस वर्ष मैं आगरे पहुँचा उस समय स्व० श्री (राजा) ज्वालाप्रसाद भी ऐग्जीक्यूटिव इंजिनियर के पद पर वहीं थे। कुछ समय तक मैं आगरा में उन्हीं के मकान में निवास करता रहा। श्री कर्नल द्वारकाप्रसाद गोयल Col. D. P. Goel I.M.S. (जो अवकाश प्राप्त कर के मेरठ रहते हैं) जो किसी समय हौड़ा आर्यसमाज के प्रधान रहे, उस समय आगरा ही में थे। आर्यसमाज आगरा को दयानन्द अनाथालय के लिए कुछ सरकारी भूमि चाहिये थी। हम तीनों श्रीमान् सर जेम्स मेस्टन से मिले, उनको उक्त भूमि दिखलाई और भूमि की प्राप्ति में सफलता हुई।

अ० ४७—राजा ज्वालाप्रसाद का विशेष परिचय— जैसा कि पैरा ३१ में लिखा जा चुका है जब मैं सन् १९०३ में लैंसडौन में हाकिम इलाका था श्री ज्वालाप्रसादजी नहर के काम पर तैनात होकर वहां आये थे। कुछ वर्ष पीछे सन् १९०७ में पटियाला दरबार ने उनकी सेवाएं युक्त प्रान्त सरकार से मांग लीं। पटयाले में इनको एग्जीक्यूटिव इंजिनियर का काम मिला। पंजाब के प्रसिद्ध दानवीर और नेता सर गंगारामजी चीफ इंजिनियर थे।

उस समय पटियाले में कौंसिल Council of Regency का शासन था। महाराजा भूपेन्द्रसिंह नाबालिग थे। पटियाला में पुलिस

का मुख्य अफसर वार्बर्टन (Mr. Warburton) नामक पंजाब से आया था। उसने रिजेंसी के समय में ही पटियाला आर्यसमाज के सब सभासदों पर जिनमें श्री ज्वालाप्रसादजी प्रधान थे केवल इस अपराध का मुकदमा चलाना चाहा कि वे आर्यसमाजी हैं, और कोई अपराध नहीं लगाया गया था। उद्देश्य यह था कि यदि ऐसे अपराध में एक देशी रयासत में आर्यों को दण्ड मिल जावे तो फिर पंजाब की पुलिस पंजाब के आर्यसमाजियों को, जिनका जनता पर बहुत प्रभाव था, दमन करने का साहस कर सकेगी। कौंसिल के प्रेजीडैन्ट श्री सरदार गुरुमुखसिंह ने ऐसा अभियोग चलाने की स्वीकृति नहीं दी। तब ११ अक्टूबर १६०६ को जिस दिन महाराजा भूपेन्द्रसिंह को शासन के अधिकार मिले वार्वरटन ने आर्य समाज पटियाला के सब ११५ सभा सदों को जिन में नं० १ श्री ज्वालाप्रसाद थे गिरफ्तार करने का हुकम नये महाराजा साहब से हासिल कर लिया। श्री ज्वालाप्रसाद ज़मानत पर रिहा कर दिये गये। बाकी आर्यसमाजी हवालात में रहे। १२ अक्टूबर को महाराजा साहब ने इस मुकदमे के सुनने के लिए एक विशेष अदालत नियत कर दी। पंजाब के सब प्रमुख आर्यसमाजी वकील (श्री रोशनलाल बैरिस्टर, श्री द्वारकादास M. A. महात्मा मुंशी राम आदि) अपराधियों की ओर से पैरवी करने को पटियाला आगये। मुकदमे में पुलिस की तरफ से बहुत पेचीदगी और देरी की गई, परन्तु थोडे दिन की काररवाई से दरबार को यह साफ तौर पर निश्चय हो गया कि मुकदमा चल नहीं सकता, लाचार

होकर दरबार ने मुकदमा वापिस ले लिया। मुकदमे का पूरा हाल The Arya Samaj and its Detractors नामक एक बड़ी पुस्तक में छप चुका है जिसका पूर्वार्ध भाग श्री रामदेवजी का और उत्तरार्ध महात्मा मुन्शीरामजी का लिखा हुआ है। परन्तु वारवंटेन की सलाह से महाराजा साहिब पटियाला ने उन सब आर्यसमाजियों को जो दरबार के कर्मचारी थे नौकरी से अलग कर दिया और जो दरबार के कर्मचारी न थे उनको राज्य से बाहर चले जाने की आज्ञा दी। श्री ज्वालाप्रसाद से युक्तप्रान्त की सरकार ने जवाब मांगा कि पटियाला दरबार के कर्मचारियों की तरह वे भी सरकारी पद से क्यों पृथक न कर दिये जांय। इस पर जो जवाब श्री ज्वालाप्रसाद जी ने लिख कर दिया वह ऐसा ही था जैसा कि एक सच्चे और आदर्श आर्य्य का होना चाहिये। वह भारत की सरकार में भेजा गया और दोनों सरकार पर यह स्पष्ट हो गया कि श्री ज्वालाप्रसाद कैसे सच्चे और निर्भीक अफसर हैं। उनको पहले सुप० इंजिनियर का पद और फिर चीफ़ इंजिनियर का पद मिला और अवकाश लेते समय भारत सरकार ने उनको राजा का पद प्रदान करके सम्मानित किया।

अ० (४७) जिस समय सन् १९१६ में मैं आगरे पहुंचा तब श्री ज्वाला प्रसादजी आगरे में एगज़ीक्यूटिव इंजिनियर थे। उस समय उनको हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस से यूनिवर्सिटी के विशाल भवन निर्माण करने के लिए निमंत्रण आया। उनसे पूछने पर मैंने

सलाह दी कि इस कार्य को अवश्य स्वीकार करना चाहिये क्यों कि बड़े महत्व का कार्य था। उन्होंने स्वीकार किया और सरकार से उनकी सेवाऐं यूनिवर्सिटी को दे दी गई। बनारस यूनिवर्सिटी के विशाल व विस्तृत भवन जिनकी तुलना भारत की किसी और यूनिवर्सिटी के भवन नहीं कर सकते सदा उनके पुरुषार्थ व भवन निर्माण कला की असाधारण विज्ञान के स्मारक रहेंगे।

खण्ड ५—कोल्हापुर में शिक्षा प्रचार

अ० ४८—रियासत कोल्हापुर में आर्यसमाज का शिक्षा प्रचार—रियासत कोल्हापुर में आर्यसमाज के प्रचार का श्रेय स्व० श्री पं० आत्माराम अमृतसरी को है। वे बड़ौदा राज्य में शिक्षा विभाग के इंस्पेक्टर थे और उनका कार्य दलित जातियों में शिक्षा का प्रचार करना था जिसमें स्व० श्री महाराजा सियाजी राव गायकवाड़ को विशेष रुचि थी। कोल्हापुर के महाराजा श्री छत्रपति शाहूजी का भी दलितोद्धार की ओर विशेष ध्यान था। श्री महाराजा गायकवाड़ को पौत्री का महाराजा छत्रपति शाहूजी के युवराज श्री राजारामजी से विवाह हुआ। इस प्रकार दोनों महाराजाओं में परस्पर अच्छा प्रेम भाव था।

२३ जन १९१८ को श्री पं० आत्मारामजी की सलाह से महाराजा साहब ने कोल्हापुर में एक गुरुकुल स्थापित किया और ३ अप्रैल १९१८ को आर्य्य समाज भी स्थापित होगया। महाराजा साहब की इच्छा थी कि उक्त समाज का संबन्ध युक्त प्रान्त की

आर्य्य प्रतिनिधि सभा से जोड़ा जाय। इसलिये उनको युक्तप्रान्त के किसी प्रमुख आर्य्य से मिलने की दृढ़ इच्छा थी।

अप्रैल १६१८ में मुझ को अपने पुत्र कान्तिस्वरूप को गुरुकुल बम्बई में प्रविष्ट कराने के लिये बम्बई जाना पड़ा। वहां से लौटते समय मैं १० अप्रैल को बड़ौदा रहा और श्री पं० आत्मारामजी से मिला। उस दिन महाराज शाहू छत्रपति बड़ौदा ही में थे। उससे पूर्व दिन ६ अप्रैल को ही श्री युवराज का विवाह महाराजा गायकवाड़ की पौत्री से हुआ था और उस दिन १० अप्रैल को विवाह की बड़हार थी। मुझ को दूसरे दिन ११ ता० को आगरे पहुँचना आवश्यक था।

श्री आत्माराम जी ने मुझको सलाह थी कि मैं श्री छत्रपति शाहू जी महाराज से भेंट करूं और कहा कि यदि मैं अपना कार्ड Visiting Card उनके पत्र के साथ भेजूं तो महाराज साहब तुरन्त ही अवश्य मिल लेंगे। मुझको ऐसी आशा तो न थी पर उनके आग्रह करने पर उनका पत्र लेकर मैं राज महल में गया जहाँ युवराज के विवाह के उपलक्ष में दक्षिण के अनेक राजा महाराजे उपस्थित थे और हाथी शेर आदि की लड़ाई व विविध प्रकार के खेल व तमाशों का आयोजन था। मैंने अपना कार्ड व श्री आत्मारामजी का नोट भेजा। मेरे आश्चर्य की सीमा न रही जब कि मैंने देखा कि मेरे कार्ड भेजने के ५ मिनट के भीतर श्री महाराज छत्रपति ऊपर से नीचे बरामदे में आकर मुझसे मिले, और बड़ी सहृदयता से मेरे साथ बातचीत की।

उस समय श्रीमान् ने यही कहा कि कोल्हापुर आर्यसमाज का संबन्ध युक्तप्रान्त की आर्य प्रतिनिधि सभा से हो जावे और मैं शीघ्र ही कोल्हापुर गुरुकुल के लिये योग्य आर्य अध्यापक भिजवादूँ, जिसको मैंने सहर्ष स्वीकार किया। परन्तु महाराजा साहब ने उसी समय यह भी कह दिया था कि उनकी इच्छा है कि पीछे कोल्हापुर का प्रसिद्ध राजाराम कालिज व हाई स्कूल भी आर्य प्रतिनिधि सभा के अधीन होजावें, क्योंकि उनकी दृढ़ अभिलाषा है कि रियासत कोल्हापुर में आर्यसमाज का प्रचार बढ़े।

मैंने आगरा पहुँच कर तुरन्त आर्य प्रतिनिधि सभा को लिखा और शीघ्र ही सभा का विशेष अधिवेशन होकर नियमों में परिवर्तन कर दिया गया जिस के अनुसार युक्त प्रान्त से बाहर की आर्यसमाजें भी उक्त सभा से संबद्ध होसकें और उस के अनुसार कोल्हापुर आर्यसमाज का संबन्ध उक्त सभा से जोड़ा गया। मैंने गुरुकुल कोल्हापुर के लिये कुछ योग्य आर्य अध्यापक भी शीघ्र ही भिजवा दिये।

कोल्हापुर के विषय में विशेष वर्णन फिर आगे आवेगा। (देखो अनुच्छेद ६४)।

६ खण्ड--रुड़की के लिये नियुक्ति और कटारपुर का बलवा

अ० ४९—I. C. S. के कार्य्यों के लिये छाँटा जाना— इस समय युद्ध के कारण उच्च अफसरों की कमी हो जाने से कुछ विशेष योग्यता वाले डिप्टी कलक्टर इस उद्देश्य से छाँटे गये कि

वे I.C.S. इंडियन सिविल सर्विस अफसरों के स्थान पर नियुक्त हो सकें। युक्त प्रान्त में ऐसे १० डिप्टी कलक्टर छाँटे गये जिन में प्रथम ५ में मेरा भी नाम था। श्रीमान् सर हाइकोर्ट वटलर लफ० गवर्नर जब आगरे आये तो मुझ को इस की सूचना मिल गई।

मेरी रुड़की सब डिविज़न में नियुक्ति—हरद्वार रुड़की सब डिविज़न के भीतर एक प्रसिद्ध तीर्थ है और प्राकृतिक दृश्यों के कारण भी एक रम्य स्थान है। मुझ को वहाँ जाने की सदा रुचि रहा करती थी। रुड़की सब डिविज़न भी देवरिया सब डिविज़न के समान एक ऐसा स्थान है जहाँ हाकिम इलाका को कलक्टर व मैजिस्ट्रेट जिला के सब अधिकार प्राप्त हैं और जो आई.सी एस. I.C.S. अफसरों के लिये सुरक्षित था। सन् १६१८ में एक मित्र ने मुझ को सूचना दी कि रुड़की के S. D. O. हाकिम इलाका का स्थान रिक्त होने वाला है और उसके लिये एक विशेष योग्यता वाले डिप्टी कलक्टर की तलाश है। मैंने एक पत्र श्रीमान् कलक्टर साहब आगरा को लिखा जो गवर्नमेंट को भेज दिया गया। बहुत शीघ्र ही मेरी तबदीली आगरा से रुड़की को हो गई और ८ मार्च १६१८को मैंने रुड़की सब डिविज़न का चार्ज ले लिया।

अ० (५.०) कटारपुर का बलवा—रुड़की सब डिविज़न का चार्ज लेने के २ सप्ताह के भीतर १८ सितम्बर सन् १६१८ को हरिद्वार के पास कटारपुर गाँव में ईद के अवसर पर हिन्दू मुसलमानों के बीच ऐसा भारी बलवा हुआ जिसमें मुसलमानों के बहुत से मकानों में आग लगकर लगभग ३० मुसलमानों की

मृत्यु हो गई, अथवा लापता होगये। जो ३ जज इस दुर्घटना की जाँच के लिए नियुक्त हुए उन्होंने अपने निर्णय में मुझ पर कई प्रकार के आक्षेप किए जिनके परिणामस्वरूप मैंने सन् १९२० में सरकारी नौकरी से पेंशन लेकर अवकाश प्राप्त कर लिया। इसलिए इस घटना का वर्णन कुछ विस्तार के साथ करना आवश्यक है।

अ० (५१) गौ की कुर्वानी में हिन्दुओं को विरोध— कटारपुर हरिद्वार से लगभग ६ मील व कनखल से ४ मील दूरी पर एक छोटासा गाँव है जिसमें लगभग ८०० मनुष्य वसते हैं; इनमें दो तिहाई हिन्दू और एक चौथाई मुसलमान हैं। परन्तु यह गाँव मायापुर तीर्थ की पवित्र सीमा के भीतर माना जाता है। बक़रीद के अवसर पर गौ की कुर्वानी के प्रश्न पर गाँव वालों में विरोध हुआ। हिन्दुओं का कहना था कि कटारपुर में पहले कभी कुर्वानी नहीं हुई। मुसलमानों का कहना था कि वे गुप्त रीति से हर वर्ष कुर्वानी करते आये हैं। १० सितम्बर सन् १९१८ को कुछ हिन्दुओं की ओर से मुसलमानों के विरुद्ध मेरी कचहरी में एक अर्जी पेश हुई जिस पर पुलिस से रिपोर्ट माँगी गई। १३ सितम्बर १९१८ को अदालत में दोनों पक्ष ने राजीनामा दाखिल कर दिया। हिन्दुओं ने दो घरों में गुप्त रीति से कुर्वानी होना स्वीकार कर लिया। परन्तु अदालत में जिन हिन्दुओं ने यह राजीनामा किया था उनके सिवाय गाँव के बाकी लोगों ने उसको मंजूर नहीं किया। आंदोलन बढ़ा। हरद्वार व कनखल के हिन्दू भी इस

आंदोलन में शरीक हो गए क्योंकि कटारपुर मायापुर तीर्थ के अन्तर्गत है। १६ सितम्बर १९१८ को ज्वालापुर के थानेदार ने पुलिस इन्सपेक्टर रुड़की को तार भेजा कि वे फौरन आवें। इन्सपेक्टर ने तार मुझको दिखलाया, एक तार मेरे नाम कुछ हिन्दुओं का आया कि बलवे का अन्देशा है। इन्सपेक्टर मुसलमान थे। मैंने उनको तथा तहसीलदार को जो हिन्दू थे तुरन्त उनके साथ कटारपुर जाने की आज्ञा दी। उनके सात आदमी फौजी पुलिस के भी गए १७ ता० बकरीद का दिन था। उस दिन भर कटारपुर में हिन्दू व मुसलमानों का जमघट रहा, और राजीनामे की कोशिश होती रही। रात को ११ बजे एक तार तहसीलदार व इन्सपेक्टर का मेरे नाम इस मजमून का आया —Qurbani stopped. Some 5000 men specially of Kankhal tried breach of peace, but did not suoseed.Strong guard with European officer and yourself needed. अर्थात कुर्बानी रोक दी गई। करीब ५००० आदमी अधिकतर कनखल वालों ने शान्ति में विघ्न करना चाहा पर असफल रहे। अधिक गारद योरूपीयन अफसर व आपकी आवश्यकता है।"

मैंने उसी समय एक तार सुपरिंटेंडेंट सहारनपुर को इस मजमून का भेजा और लिखा कि कटारपुर में फौजी पुलिस और भेजे, परन्तु यह तार उनको समय पर नहीं मिला और सहारनपुर से फौजी पुलिस बलवा हो जाने के बाद कटारपुर पहुँची। इसके सिवाय मैं दो बजे रात की रेल से स्वयम् सहारनपुर गया।

४॥ बजे पहुँचा। मि. स्टब्ज Mr. L. M Stubbs मैजिस्ट्रेट जिला को सोते से जगाकर इन्सपेक्टर का तार दिखलाया। उन्होंने उस पर यह आज्ञा लिख दी कि अगर कुर्बानी से बलवे का अन्देशा हो तो कुर्बानी रोक दी जाय पर रोकने वालों के नाम नोट कर लिए जावें ताकि पीछे उनके विरुद्ध कार्रवाई की जा सके।

मैं ५ बजे की रेल से चलकर ६ बजे सुबह ज्वालापुर और ११ बजे कटारपुर पहुँच गया। मैंने इन्सपेक्टर व तहसीलदार से जो वहाँ की चौपाल में थे उस समय तक के सब हाल मालूम किये और उनके सामने यह विचार रक्खा कि मैं कुर्बानी बन्द करने की आज्ञा देता हूँ। इस पर इन्सपेक्टर ने कहा कि ऐसी आज्ञा देने से यह संभावना है कि मुसलमान दंगा कर बैठें। इसलिए पहले दिन (१७ ता० को) जो सुलह की कोशिश की गई थी और सुलह की शर्तें लगभग तै हो चुकी थीं, कुछ थोड़ा मतभेद रह गया था, उस कोशिश को फिर जारी किया जाय। तहसीलदार ने भी इसका समर्थन किया। मैंने उनकी राय को ठीक समझा क्योंकि वे पहले से वहाँ उपस्थित थे, और राजीनामे का फैसला अच्छा ही होता है। इसलिए दोनों पक्ष के नेताओं को बुलाने के लिए हरद्वार, कनखल आदि स्थानों को आदमी भेजे गये।

अ० (५२) बलवे का आरंभ व गाँव में आग लगना— मेरा अब विश्वास है कि यदि मैं जाते ही कुर्बानी रोकने की आज्ञा दे देता, जैसा पहले मेरा विचार था, तो शायद बलवा

न होता। परन्तु यह ऐसी सूझ है जो घटना के बाद हुआ करती है, जैसा अंगरेजी में कहावत है—Wisdom coming after the event. कटारपुर पहुँच कर मेरा पहला कर्त्तव्य यही था कि तहसीलदार व इंस्पेक्टर से जो एक दिन पहले से वहाँ उपस्थित थे सब हालात की जानकारी करूँ। उन दोनों ने यही सलाह दी कि आपसी समझौता या सुलह कराने की दोबारा कोशिश की जावे। इस लिये नेताओं को बुलाने के लिए कनखल व हरद्वार आदमी भेजे गए। बलवा हो जाने के पीछे यह मालूम हुआ कि हिन्दुओं में यह अफ़वाह फैल गई थी (जिसकी तहसीलदार व पुलिस को भी उस समय जानकारी नहीं थी) कि मुसलमानों द्वारा एक गाय छिपाकर लाई हुई है और कुर्बानी ज़रूर होगी। इससे जनता में हलचल फैल गई। जब मैंने १२ बजे हालत में यह तबदीली देखी तो अधिक देर करना उचित न समझकर धारा १४४ ज़ाब्ता फौजदारी के अनुसार यह आज्ञा लिखदी कि कुर्बानी नहीं होगी, और कटारपुर के जो आदमी चौपाल में थे उनको सुनाकर कहा कि वे इस बात को लोगों में फैला देवें। परन्तु उसी समय यह पुकार हुई कि हिन्दू मारे गए। मालूम हुआ कि एक साधु गाय छिपाई जाने को शुबह से मसजिद में झाँकता था कि किसी मुसलमान ने उसको मारा, उसके सिर में एक साधारण चोट थी। इस छोटी-सी घटना का वह असर हुआ जो बारूद में एक चिनगारी से होता है

इधर उधर मारपीट शुरू हो गई। मैं तुरन्त तहसीलदार व पुलिस को (मय ७ हथियार बन्द सिपाहियों के) साथ लेकर चौपाल से बाहर निकला और गाँव में घुसा। हम लोगों को देखकर लोग भाग जाते थे। कोई मुकाबला नहीं करता था। इसलिए बन्दूक की फैर करने का कोई प्रश्न ही न था। कनखल के कुछ हिन्दू नेता जो अब पहुँच गये थे मिले। उनको समझाया गया कि वे भीड़ न होने देवें और लोगों का इतमीनान कर देवें कि कुर्बानी नहीं होगी, हमारे अहलकार साथियों ने करीब एक घण्टा तक दो चक्कर गाँव में लगाये। केवल ३ जख्मी मुसलमान देखे गए, उनको अस्पताल भिजवाने की आज्ञा दी गई। इतने में ही कुछ मुसलमानों के घरों में जो फूंस के छप्परों के थे आग लग गई। किसी को आग लगाते नहीं देखा गया परन्तु शुबहा यही था कि हिन्दुओं में से किसी ने लगाई। मैंने पुलिस व जनता की मदद से आग बुझवाने व रुकवाने का भरसक यत्न किया। पानी अधिक मिलना असंभव था। लाठियों से जलते छप्पर तोड़ने का यत्न किया गया। परन्तु हवा तेज थी। आग सारे छप्परों में फैल गई। जहाँ तक संभव था मकानों के भीतर से आदमियों को निकाला गया। कुछ आदमी निकले और यह खयाल हुआ कि अब कोई आदमी मकानों के अन्दर बाकी नहीं हैं, क्योंकि पहले दिन जब सुलह की कोशिश में सफलता नहीं हुई थी तो मुसलमानों ने अपने परिवारों को दूसरे गाँव में भेज दिया था। जब आग

ज्यादा फैली तो सरकारी कर्मचारी और मैं चौपाल में चले गये, और जब चौपाल के पास भी आग पहुँची तो गाँव के समीप एक बाग में जाकर खड़े हुए। मेरा विचार हुआ कि एक बार फिर गाँव में चक्कर लगाया जाय। यदि ऐसा किया जाता तो अच्छा होता। पर इंसपेक्टर व सब-इंसपेक्टर ने (जो दोनों मुसलमान थे) ऐसी सलाह न दी। इसका कारण जो पीछे मालूम हुआ यह था कि उनको भय था कि हिन्दू लोग उनको मार डालना चाहते हैं।

अ० (५३) बलवे का घोर दुष्परिणाम—हम लोग करीब २ घंटे तक बाग में रहे। इसी बीच गाँव में ज्यादा नुकसान हुआ। लगभग ४ बजे जब गाँव की आग खतम हुई और मैं व सरकारी कर्मचारी गाँव के भीतर गये तो देखा कि जिन ३ मुसलमानों को हमने जखमी देखा था वे अस्पताल नहीं भेजे गये। किन्तु उन तीनों की व कुछ और आदमियों की लाश भूसे पुयाल व उपलों की आग में डाल दी गई थी। एक सत्यकाम नामक साधु ने जो पीछे पुलिस का सरकारी गवाह बन गया और कुछ अन्य गवाहों ने कुछ अपराधियों को उन लाशों के आग में डालते हुए देखना बयान किया। उससे भी अधिक दुःखदायक दुर्घटना यह हुई कि जिन मकानों में आग लगी थी उनमें से कई के भीतर आदमी थे। उनमें से कुछ धूएं से दम घुट कर बेहोश हो गये थे। उनको पीछे होश होगया। कुछ दम घुटकर (बिना

किसी चोट या जखम के, मर गये थे। कुल १७ लाशें मिली जो अस्पताल भिजवाई गईं। मैंने बाग में से ही एक तार मैजिस्ट्रेट जिला व एक कमिश्नर साहब को इस दुर्घटना की सूचना का भेज दिया था। जब हम सब कटारपुर से मायापुर (हरद्वार) को चलने को थे तो लगभग २०० मुसलमानों का झुंड ज्वालापुर व अन्य पास के गाँवों का कटारपुर पहुँचा और वे गाँव के भीतर जाना चाहते थे जिसका परिणाम बुरा होता। उनके साथ ज्वालापुर के एक प्रमुख मुसलमान जमींदार राव चाँदखां थे उनको समझाया और उनके समझाने से वह सब समूह वापिस ज्वालापुर की ओर लौट गया।

अ० (५४) बलवे के पीछे का प्रबन्ध—मैं तहसीलदार व पुलिस और सेक्रेटरी म्यूनिसिपैलिटी हरद्वार (जो पीछे मौके पर पहुँच गये थे) कटारपुर से चलकर लगभग ८ बजे हरद्वार (मायापुर) पहुँचे। मैंने जाते ही एक तार कमांडिंग अफसर रुड़की को भेजा कि सख्त बलवा होजाने से जनता में बेचैनी और भय है, तुरन्त फौज हरद्वार भेजी जाय। रात ही में रुड़की से पर्याप्त फौज आगई। ज्वालापुर के मुसलमानों में (जिनकी संख्या वहाँ के हिन्दुओं से दूनी है) व आस पास के गाँवों के मुसलमानों में अशान्ति हो गई थी और इस बात का अवश्य भय था कि वे कनखल हरद्वार के हिन्दुओं पर बदला लेने के भाव से हमला करें।

फौज के आने से यह भय दूर होगया। परन्तु एक यह भूल हुई कि जब हम सब कटारपुर से चले तो वहां कोई पुलिस गार्ड नहीं छोड़ा गया। परिणाम यह हुआ कि कटारपुर के कुछ हिन्दुओं ने रात में कुछ और खाली मकानों में आग लगादी और कुछ और लाशें आग में डालदी। प्रातःकाल ४ बजें के समीप कलक्टर व सुपरिंटेंडैंट पुलिस साहब रेल से चल कर वहां पहुँचे और उन्होंने ऐसे मकान जलते देखे और कुछ लाशें आग में पड़ी हुई देखी।

अ० (५५) कलक्टर व सुपरिंटेंडैंट पुलिस का आगमन और बलवे की जांच का आरम्भ—१६ सितम्बर १६१८ के सुबह मि० स्टवज़, कलक्टर व सुपरिंटेंडैंट पुलिस रेल से ज्वाला-पुर पहुँच गए। उनके आने से पहले मैं प्रातःकाल बाबू कल्यानसिंह सेक्रेटरी म्युनिसिपल बोर्ड को साथ लेकर कन-खल गया। रात में कोई घटना न होनी पाई। बाज़ार में बलवे के प्रमुख नेताओं को देखा उनके नाम अपनी नोट बुक में नोट किये और कलक्टर साहब को बतलाये, मैंने यह सुझाव भी रक्खा कि उनको गिरफ्तार किया जाय। परन्तु उन्होंने सुप० पुलिस की सलाह लेकर उस समय ऐसा करना उचित नहीं समझा। क्योंकि पुलिस की जांच बाज़ा-बता शुरू होनेवाली थी।

अ० (५६) विशेष पुलिस की जांच और विशेष न्यायालय की स्थापना—सुपरिंटेंडैंट साहब पुलिस ने उसी समय

जांच शुरू कर दी। परन्तु सरकार ने मि० गोड़ Mr. Goad, D. I. G., डिप्टी इन्सपेक्टर जनरल पुलिस को इस मुक़द्मे की जांच के लिए नियत कर दिया था। गोड साहब के आने पर पुलिस की तहक़ीक़ात बड़ी सरगर्मी से होती रही। जैसा ऐसे मुक़द्मे में होता है बहुत मनुष्य गिरफ्तार किये गये और करीब २०० अपराधी पुलिस की तहक़ीक़ात खतम होने पर उस नयी अदालत में चालान किये गए जो सरकार ने **भारत रक्षा विधान** Defence of India Rules के अनुसार निम्न लिखित ३ जजों को इस बड़े मुक़द्मे को सुनने के लिए बनाई थी और जिसके फ़ैसले की कोई अपील नहीं हो सकती थी—(१) **श्रीमान् टडबाल** G. Tudbal I. C. S. जज हाईकर्ट, प्रधान न्यायाधीश, (२) **श्री ऐल्सटन** Mr. C. Ross Alston बैरिस्टर ऐटला, (३) **श्री दलाल,** सेशन्स जज।

अ० (५७) **दोनों पक्ष के वकील आदि**—सरकार की तरफ से **श्रीमान् बालक** Mr. Wallach जो एडवोकेट जनरल थे मुक़द्मे की पैरवी के लिए नियत हुए। अपराधियों की संख्या बहुत थी। उनकी ओर से बहुत से वकील थे, कुछ सब अपराधियों की ओर से जिनमें लाहौर के प्रसिद्ध बैरिस्टर श्री रोशनलालजी, व देहरादून के प्रसिद्ध वकील श्री ज्योतिस्वरूप जी भी थे। कुछ विशेष अपराधियों की सफ़ाई के लिए थे।

मुक़द्मे की कारवाई दैनिक पत्रों में छपती थी । जब मुकद्मे की सुनवाई हो रही थी तो मेरे परममित्र श्री पं० घासीरामजी M. A. L.L. B. तथा श्री राजा ज्वालाप्रसादजी मुझसे मिलने के लिये आये । जैसा आगे लिखा जायगा मुक़द्मे में मेरी विचित्र स्थिति थी जो उस कारवाई से भी मालूम होती रहती थी जो पत्रों में प्रकाशित होती थी ।

अ० (५८) मुक़द्मे में मेरी विचित्र स्थिति—मैं सरकारी गवाहों में एक प्रमुख गवाह था । जैसाकि जजों ने स्वयम् अपने फैसले में लिखा है वे मुझ से विशेष रूप से सच्चे हाल जानने की आशा कर सकते थे। परन्तु दुर्भाग्य से ऐसा न हो सका । चलवे के कुछ दिन ही के पीछे मेरी बदली रूड़की से सहारनपुर को हो गई, मुझको सहारनपुर सिटी का व सहारनपुर तहसील का चार्ज मिला। इन्सपेक्टर मु० यूसुफ व सब इन्सपेक्टर मसीहुल्ला वहीं रहे और पुलिस ने मुकद्मे को ऐसा रूप दे दिया जिससे उनका उत्तरदायित्व कम हो जाय, और हिन्दू अपराधियों व कुछ हिन्दू अफसरों के अपराध वा व्यवहार को बढ़ा कर दिखाया जाय । मेरा बयान ६ दिन तक होता रहा । मैंने अपने बयान में पुलिस की बनावटी बातों का समर्थन नहीं किया । जजों ने पुलिस की बनावटी बातों को भी सत्य मान लिया और मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया जैसाकि एक विरोधी गवाह Hostile Witness के साथ होता है । सफाई के वकीलों को तो

मेरे साथ जिरह करना ही था परन्तु सरकारी वकील ने भी मेरे साथ जिरह की और सब से अधिक प्रधान जज महोदय श्री टडबाल ने की। जो प्रश्न मुझ से किया गया उसका उत्तर पूरा न होते हुए दूसरा प्रश्न वे सलसिले कर दिया जाता था। एक गवाह को अपने जज के प्रश्न पर आपत्ति या प्रतिवाद करने का कोई कानूनी अधिकार नहीं होता। परिणाम यह हुआ कि मेरे बयान में बहुत सी बातें ऐसी लिखी गईं जो बेसिलसिले थी और जिनमें कहीं कहीं झूंठा विरोध या विरोधाभास भी दीख पड़ता था।

अ० (५९) श्री नार्टन का सफाई की ओर से आगमन— मुकदमे के बीच में अपराधियों की ओर से कुछ समय के लिये श्री नार्टन Mr. Norton बुलाये गये जो उस समय मदरास में काम करते थे व फौजदारी मुकदमों की पैरवी में विशेष योग्यता रखने वाले प्रसिद्ध थे। उनके आने से मुकदमे की सुनवाई के ढंग में कुछ परिवर्तन हुआ। मेरे एक मुरादाबाद निवासी वकील पं० राधाकृष्णजी ने जो आगरा कालिज में मेरे सहपाठी रहे थे और इस मुकदमे में एक सफाई के वकील थे मुझ से कहा कि श्री नार्टन ने कुल मिसल को देख कर मेरी गवाही का बहुत मान किया और कहा कि न तो पुलिस ने पूरी सच्ची बात रखी है और अपराधियों में से तो बहुत से वास्तव में अपराधी ही थे वे पूरा सत्य कैसे कह सकते थे? परन्तु मेरे बयान के विषय में श्री नार्टन ने मिसल के आधार पर और अपने दीर्घ अनुभव के

आधार पर यह दृढ़ मत स्थिर किया कि मैं ने सही वयान किया है।

अ० (६०) श्री नार्टन की जिरह और उसका परिणाम– उसके परिणाम रूप श्री नार्टन महोदय ने जब मेरे साथ जिरह की तो मेरे पहले वयान में जो कुछ असंगति आदि दोष पहले जज महोदयों की अनुचित जिरह के कारण आ गये थे उनको दूर करने के लिये मेरा वयान इस प्रकार कराया जैसा आरम्भ में वास्तव में होना चाहिये था। उससे उसके वहुत से दोष दूर हो गये परन्तु इसका फल यह हुआ कि श्री वालक Mr. Wallaeh सरकारी वकील ने एक दिन मुझ से कहा "क्या मैं पूछ सकता हूँ कि आप सरकारी गवाह होते हुए अपराधियों के वैरिस्टर श्री नार्टन साहव के पास क्यों गये"। मैंने कहा कि यह विलकुल झूंठ है। मैं उनके पास नहीं गया, आप से किसने यह वात कही? श्री वालक साहव ने इस सवाल को टाल दिया। मालूम हुआ कि किसी ने उनसे कहा नहीं था उनका ही झूंठा भ्रम था, और वह शायद इसलिये हुआ हो कि मिस्टर नार्टन ने मुझको सच्चा गवाह मान कर प्रश्न किये। सव त्रुटियां तो श्री नार्टन की जिरह से दूर नहीं हो सकती थीं। जो वाकी रही उनके वावत जज महोदयों ने अपने निर्णय में मेरे ऊपर आक्षेप किये। उनकी नकल सरकार ने मेरे पास भिजवा कर ११ अक्टूबर १६१६ की आज्ञा द्वारा मेरा जवाव मांगा।

अ० (६१) जजों के आक्षेप और मेरा उत्तर— मैंने सव आक्षेपों के उत्तर में अपना विस्तृत जवाव २८ नवम्वर

१९१९ को सरकार के पास भेजा जिसकी तय्यारी में मुझको अपने मित्र श्री पं० घासीराम जी तथा श्री (राजा) ज्वाला प्रसाद से बहुत सहायता मिली। मैंने इस कार्य के लिए एक मास का अवकाश ले लिया था और उस समय मैं श्री ज्वालाप्रसादजी के पास ही हिन्दू यूनिवर्सिटी काशी में रहा जहां कि वे प्रो-वाइस चैंसलर का काम करते थे। मेरे जवाब के विषय में कलक्टर व कमिश्नर साहब ने जिनके द्वारा वह गवर्नमेंट के पास भेजा गया प्रशंसा करते हुए कहा कि वह बहुत योग्यतापूर्ण और युक्ति-युक्त था। परन्तु किसी ने अपना ऐसा अनुकूल मत लिखने की कृपा नहीं की। इसके कुछ कारण आगे मालूम होंगे।

अ० (६२) मेरे उत्तर पर गवर्नमेंट की आज्ञा— मेरे जवाब पर जो इतने विस्तार से युक्तिपूर्वक लिखा गया था Sir Harcourt Butler ल० गवर्नर साहब ने कोई युक्ति युक्त आज्ञा नहीं दी केवल यह आदेश जारी हुआ कि मैं डिप्टी कलक्टरी के सब से निचले दर्जे में रक्खा जाऊँ। जब मैंने इस आज्ञा की नक़ल चाही तब एक आज्ञा २६ मार्च १९२० को दी गई जिसका भाव यह था कि श्रीमान् ल० गवर्नर साहब ने मेरे जवाब पर विचार किया पर उसको बिलकुल असन्तोष जनक और अपर्य्याप्त पाया। जजों के निर्णय के अनुसार मेरा नौकरी से पृथक किया जाना भी अनुचित न होता परन्तु मेरे पिछले कार्य्यों व सेवाओं Past record का ध्यान करके श्रीमान् ल० गवर्नर साहब ने मुझको डिप्टी कलक्टरी के निचले दर्जे में रक्खे जाने का निश्चय किया।

यह लिखना अनुचित न होगा कि जब यह विषय सरकार के विचाराधीन था तो कई प्रतिष्ठित मुसलमान रईसों ने जो सर हार कोर्ट वटलर के परम मित्र थे (और जिनके नाम लिखना मैं उचित नहीं समझता) श्रीमान् के कानों में मेरे विरुद्ध बातें पहुँचाई । स्वर्गीय श्री सर तेज बहादुर सप्रू जैसे उच्च दर्जे के महोदयों ने मुझ को यह सूचना दी। मैंने उन से उपाय पूछा तो श्रीमान् ने कहा कि उपाय मैं नहीं बतला सकता पर आप सचेत रहें कि आप के विरुद्ध श्रीमान् लाट साहब के कान भरे जा रहे हैं। "मुसलमानों के घरों को ज़लते हुए देखते रहे। पुलिस ने बन्दूकों की फैर करने की आज्ञा मांगी–पर आज्ञा नहीं दी–" इस प्रकार की बातें, जो बिलकुल झूठ थी फैलाई गई। विजनौर के एक पत्र में यह बातें प्रकाशित हुई थी। मैंने सम्पादक पर मानहानि की नालिश करने की आज्ञा मांगी जो इस कारण नहीं दी गई कि कुल मामले की जांच ३ जजों की विशेष अदालत के सामने आने वाली है।

जजों के आक्षेपों में एक विशेष आक्षेप यह था कि मैंने अपने बयानों में हिन्दू नेताओं को बचाने का यत्न किया। बलवे के दूसरे प्रातः काल १६ सितम्बर १६२० को मैंने कनखल बाज़ार में ४ प्रमुख नेताओं (श्री बरम दास आदि) को देखकर उनके नाम श्रीमान् कलक्टर व सुपरिंटैंडैंट पुलिस साहब को बतला कर यह सुझाव भी रक्खा कि उनको गिरफ्तार किया जाय गो यह उस समय उचित नहीं समझा गया।

जेल में मैंने इन सब नेताओं को शनाख्त किया। फिर यह आक्षेप कि मैंने बयानों में (जो बाद को ही हुए) उन को बचाने का यत्न किया नितान्त निर्मूल नहीं तो क्या है। ऐसी भूल जज महोदयों को कैसे हुई यह भी मैंने अपने विस्तृत जवाब में जो सरकार को भेजा था स्पष्ट करके दिखलाया है।

अ० (६२ क) बलवे के मुकद्में में जजों के फैसले का सारांश—जिस बलवे का और तत् सम्बन्धी मुकदमें का कुछ विस्तार से वर्णन किया गया है उसमें जजों के दिये फैसले का सारांश लिखना उचित ही है --

१७२ अभियुक्त पुलिस ने अदालत में चालान किये थे। उनमें से ७ को जजों ने रिहा कर दिया क्योंकि उनके विरुद्ध पर्याप्त सबूत नहीं था। १६५ रहे जिनके विरुद्ध बलवे व मनुष्य हत्या के जुर्म की सुनवाई हुई। इनमें से २० अन्त में बरी किये गये अर्थात् निर्दोष ठहराये गये। शेष १४५ में से ८ को फांसी की सजा (मृत्यु दण्ड) दिया गया। इनमें तीन (बरम देव, गुलाब गिरी व हरनाम सिंह) कनखल के महन्त थे और एक (पूरन प्रसाद) कनखल की सेवा समिति का डाक्टर था। १३५ अपराधियों को बलवे व मनुष्य हत्या के अपराध में आजीवन कारावास का दण्ड दिया गया। दो सरकारी कर्मचारी थे जिनको बलवे की सहायता Abetment के अपराध में सात सात वर्ष कारावास का दण्ड मिला। इनमें एक कल्यान सिंह हरद्वार म्यूनिसिपैलिटी का सेक्रेटरी बलवे के समय व कई वर्ष पूर्व से

था। दूसरा शिवदयाल सिंह मायापुर (हरद्वार) का पुलिस सब इन्सपेक्टर था, हरद्वार व कनखल के लोग साधारणतया इन दोनों को निर्दोष समझते थे। उनकी धारणा थी कि उन को केवल इस कारण से कि ये हिन्दू थे पुलिस ने मुसलमान गवाहों से इनके विरुद्ध सबूत दिलवाकर दण्डित कराया। दोनों का जनता की दृष्टि में व मुकद्दमे से पहले सरकार में भी अच्छा मान था, और २ या ३ वर्ष की कैद भुगत कर दोनों जेल से मुक्त होगये। शिवदयाल सिंह की रिहाई के लिए पुलिस विभाग के उच्च अफसरों ने ही उसके पूर्व अच्छे कारनामे के आधार पर सिफारिश की और जेल के अफसरों ने भी उसका जेल में सद्व्यवहार देखकर उसकी रिहाई में योग दिया। कल्यानसिंह कई वर्ष से हरद्वार म्यूनिसिपैलिटी के सेक्रेटरी रह चुके थे। श्री होबार्ट Hobart I. C. S. जो मेरे रुड़की जाने से पूर्व रुड़की में कई वर्ष तक हाकिम इलाक़ रहे थे उनसे अच्छी तरह परिचित थे और उनके काम व चरित्र से बहुत सन्तुष्ट थे। श्री होबार्ट साहब ने उनकी रिहाई के लिए विशेष प्रयत्न किया और जेल से रिहा होने पर उनको बलरामपुर रियासत में जो अवध की सब से बड़ी तालुकेदारी थी जीवन निर्वाह के लिए अच्छे व्यवसाय की व्यवस्था करादी।

अ० (६३)—मेरा पेंशन लेकर पूर्ण अवकाश प्राप्त करना—ऊपर वर्णित आज्ञा पाकर मैंने सरकारी नौकरी पर वापिस न जाने का निश्चय कर लिया। और

पेंशन के लिए निवेदन पत्र भेज दिया। ३ मास की सवेतन और एक वर्ष की अर्ध वैतनिक (फर्लो) अवकाश की अर्जी मैं जनवरी १६२० में ही दे चुका था जो मंजूर हो गई थी। दिसम्बर सन् १६२० में मेरी पेंशन भी जो नवीन स्थिति के अनुसार १७६॥।≈ मासिक होती थी स्वीकृत हो गई। मैंने अनु० ६) में जो वर्णन अपनी आर्थिक स्थिति का दिया है उसकी दृष्टि से यह पेंशन बहुत कम ही थी। यदि कटारपुर बलवे क दुर्घटना के कारण मैं समय से पहले त्यागपत्र न देता तो मुझ को कम से कम ५००) मा० अथवा (विशेष सेवाओं की दृष्टि से) ७००) मा० तक पेंशन मिल सकती थी जैसा कि मेरे छोटे भाई प्यारेलालजी को मिली। मुझ को जनवरी सन् १६२१ से पूर्ण अवकाश प्राप्त हो गया।

७ खण्ड—कोल्हापुर के कार्यालय की प्रगति

अ० (६४)—कोल्हापुर के रामजस कालिज तथा हाईस्कूल का आर्य प्रतिनिधि सभा की अधीनता में आना—जैसा कि अनुच्छेद ४८ में लिखा जा चुका है श्री छत्रपति शाहूजी महाराज ने १० अप्रैल १६१८ ही को जब मैंने उन में बड़ौदा में पहली बार भेंट की थी, यह कहा कि उनकी इच्छा है कि कोल्हापुर के प्रसिद्ध रामजस कालिज व हाईस्कूल को भी आर्य प्रतिनिधि सभा युक्त प्रान्त अपने प्रबन्ध में लेलेवें, जिससे रयासत के भीतर सुगमता से वैदिक धर्म का प्रचार हो सके। सन् १६१८ में जब मेरी बदली

रुड़की को हो चुकी थी इस कार्य के लिए श्री महाराजा साहब ने सभा नेताओं सहित मुझ देहली बुलाया। वहां सब नेता महाराजा साहिब से मिले और सभा ने कालिज व हाईस्कूल का प्रबन्ध लेना स्वीकार कर लिया। कटारपुर के झगड़े के कारण मैं इस कार्य के लिए कोल्हापुर नहीं जा सका। केवल श्री कुंवर हुकमसिंहजी जो सभा के प्रधान थे गये और ३१ मई १९१८ को सभा व दरबार कोल्हापुर के बीच इकरार नामा लिखा गया जिस के अनुसार दरबार ने १२ हजार रुपया वार्षिक ग्रांट कालिज के लिए व दस हजार हाईस्कूल के लिए देना स्वीकार की, और आर्य प्रतिनिधि सभा ने इमदादी (Aided) संस्थाओं के रूप में उनका संचालन करना स्वीकार किया। ३०सितंबर १९१८ की अन्तरंग सभा ने दोनों संस्थाओं मे प्रबन्ध के लिए एक शिक्षा समिति Arya Education Board के नाम से नियत किये जाने का निश्चय किया। १६ मई १९२० की अन्तरंग सभा में उस के नियम स्वीकृत हुए। सभा के प्रधान श्री कुंवर हुकमसिंहजी उस समिति के प्रधान रहे और मैं मन्त्री नियत हुआ। इस समिति को कालिज व स्कूल दोनों के प्रबन्ध और अध्यापकों की नियुक्ति आदि का पूरा अधिकार प्राप्त था।

अ० (६५)—उक्त संस्थाओं के निरीक्षणार्थ मेरा कोल्हापुर जाना—मैंने सन् १९१९ में एकबार कालिज व स्कूल का निरीक्षण किया था। १६ मई सन् १९२० की अन्तरंग सभा में निश्चय हुआ कि मैं फिर कोल्हापुर की सब संस्थाओं का निरीक्षण

करूँ। मैंने कोल्हापुर जाकर १३ से २० सितम्बर १९२० तक (जब कि मैं सरकारी कार्य से फर्लो पर था) निरीक्षण कर के विस्तृत रिपोर्ट सभा में भेजी जिसमें विशेषकर कोल्हापुर राज्य में वैदिक धर्म प्रचार की आवश्यकता दिखला कर उसके साधन बतलाये थे। यह रिपोर्ट सभा की सन् १९२० की वार्षिक रिपोर्ट के परिशिष्ट (क) के रूप में छपी है। सब संस्थाओं का और उनके प्रबन्ध का वर्णन सन् १९२० व १९२१ की सभा की रिपोर्टों में सविस्तार छपा है। कोल्हापुर के कार्य का कुछ वर्णन अनुच्छेद ७५ में भी किया गया है। यह कार्य श्री महाराजा शाहूजी छत्रपति के स्वर्गवास के पश्चात् सन् १९२७ में समाप्त हुआ।

अ०(६६)—मेरा गुरुकुलवृन्दावन की सेवा करना—श्रीछत्रपति शाहूजी महाराज की इच्छा थी कि मैं स्थायी रूप से कोल्हापुर रह कर राजाराम कालिज, हाईस्कूल, गुरुकुल तथा अन्य संस्थाओं के प्रबन्ध की देख रेख करूं। १ व ५ फरवरी १९२१ के निज पत्रों द्वारा इसी अभिप्राय से मुझ को शीघ्र कोल्हापुर आने के लिये लिखा गया था। मैं जनवरी १९५१ में सरकारी नौकरी से पेंशन लेकर पूर्ण अवकाश प्राप्त कर चुका था। परन्तु उस समय वृन्दावन गुरुकुल में आचार्य व मुख्याधिष्ठाता का स्थान रिक्त था। श्री महात्मा नारायण स्वामी(उस समय श्री महात्मा नारायणप्रसादजी) जिन्हों ने वर्षों तक गुरुकुल की अपूर्व सेवा की थी सन् १९१९ के अन्त में गुरुकुल का कार्य श्री प्रो० ज्वालाप्रसादजी को सौंप कर एकान्त

सेवन के लिये रामगढ़ (जिला नैनीताल) में कुटी बना कर निवास करने लगे थे। अगस्त सन१९२० में बाबू ज्वालाप्रसाद भी गुरुकुल छोड़ कर चले गये। कुं० हुकमसिंहजी ने जो सभा के प्रधान थे व्यवस्थापक रूपसे कुछ मास तक काम चलाया। कुछ मित्रों की सलाह से जिनमें मुख्य श्री पं० घासीरामजी भी थे, मैंने कोल्हापुर जाने की अपेक्षा गुरुकुल वृन्दावन का कार्य सम्हालना उचित समझा और १३अप्रैल सन१९२१से आचार्य व मुख्याधिष्ठाता का काम करने लगा। उस समय मेरी आर्थिक दशा बहुत हीन थी जिसका कारण आगे प्रकट होगा (देखो अनुच्छेद ६८)। सभाने मुझ को २५०) मासिक पुरस्कार रूप से देना निश्चय किया और ऊपर लिखे कारण मैंने उस समय स्वीकार किया, परन्तु मुझ को यह कदापि पसन्द नहीं था, और टिहरी राज्य की सेवा से लौटकर मैंने यह सब धन जो इस प्रकार सभा से पाया था ३०००) दान रूप से सभा को लौटा दिया।

८ खण्ड—टिहरी राज्य की सेवा।

अ० ६७—टिहरी राज्य की सेवा स्वीकार करना—

जैसाकि अनुच्छेद २४ में लिखा जा चुका है टिहरी के महाराजा साहब कीर्तिशाह का विचार मेरी सेवाओं को युक्त प्रान्त की सरकार से Loan के रूप में मांगने का था। परन्तु सन् १९१३ ई० में ३६ वर्ष की अल्प आयु में ही उन का स्वर्गवास हो गया। राज्य शासन के लिए कौंसिल Regency नियत हुई, सन् १९२० में उनके सुपुत्र महाराजा नरेन्द्र शाह को राज्य के पूर्ण अधिकार

प्राप्त हुए। अक्टूबर सन् १६२१ में श्री महाराजा साहब ने एक विश्वस्त कर्मचारी मेरे पास भेजा जो २२अक्तूबर १६२१ को मेरठ में मुझ से मिला और मुझको यह मौखिक संवाद दिया कि श्री महाराजा साहब मुझको चीफकोर्ट के कार्य के लिये बुलाना चाहते हैं। मैंने कहा कि यदि दरबार की ओर से कोई लिखित पत्र आवेतो विचार करके उत्तर दूंगा। ६ नवम्बर सन् १६२१ को मेरी देहली में श्री महाराजा साहब व उनके दीवान पं० भवानीदत्त उनियालजी से भेंट हुई और मैंने ८००) मासिक वेतन मिलने की शर्त पर दरबार की सेवा करना स्वीकार कर लिया, और आर्य प्रतिनिधि सभा को इसकी सूचना देदी। मेरा त्याग पत्र पहले से ही सभा में पेश था जो स्वीकार हुआ। २८ फरवरी सन् १६२२ को मैंने श्री पं० शिवनारायण शुक्ल जी को जो सहायक मुख्याधिष्ठाता थे कार्य सौंपकर गुरुकुल से अवकाश प्राप्त किया। उस दिन की डायरी में मेरा नोट है—"शोक कि मैं गुरुकुलकी कुछ भी सेवा न कर सका"।

टिहली की सेवा स्वीकार करने के विशेष कारण— संवत् १६७८ की डायरी देखने से पाया जाता है कि टिहरी राज्य की सेवा संबंधी पत्र व्यवहार मे मैं बहुत खिन्न मन रहता था। १४ नवम्बर सन् १६२० की डायरी में नोट है : "हे परमेश्वर! क्यों ऐसी आवश्यता हुई कि एक बन्धन से छूटकर फिर बन्धन में पड़ने की लालसा! ता० ११ फरवरी सन् १६२१ की डायरी में नोट है" मेरा दुर्भाग्य है कि फिर नौकरी स्वीकार करनी पड़ी"।

वास्तव में इस का कारण यह था कि सन १६१६ में मेरे पुत्र स्व० शांतिस्वरूप ने मेरे छोटे भाई बालमुकुन्द जी के साझे में मोटर लौरियों का एक बड़ा कारबार किया था जिसमें दोनों को लगभग ७५ हजार रुपये की हानि उठानी पड़ी। सन् १६२१ में जब मैंने गुरुकुल की सेवा स्वीकार की यह पता लग गया था कि उक्त व्यवसाय में बहुत हानि हो रही है। पीछे हिसाब होने पर पता लगा कि ३७५००) मुझ को अपने पुत्र की ओर से उस हानि के पूरा करने में देना होगा। मेरी उस समय तक की जो पूंजी थी उस सब को देकर लगभग ८ हजार रुपया टिहरी जाते समय मुझ को और देना बाकी रहा था। ऐसी दशा में टिहरी दरबार की ओर से जो मेरी बुलाव हुई मैंने उसको दैवी संयोग समझ कर स्वीकार किया। यदि ऐसी परिस्थिति न होती तो मेरी कदापि दोबारा नौकरी करने की इच्छा न थी।

अ०(६६क)—बालमुकुन्दजी का आर्थिक संकट—मोटर लौरियों के कारबार में बालमुकुन्द जी को भी ७५०००) की हानि हुई। उनको कपड़े के कारबार में भी जो उनका पुराना पैतृक व्यवसाय था बहुत हानि हुई। कर्जा बहुत हो गया, मेरे पिता ला० रामदासजी का नाम भी साझी रूप से बालमुकुन्द जी के कारबार में शामिल था। इसलिए पिताजी को चिन्ता रहती थी। वे वृद्ध थे और दमे के रोग से रुग्ण

रहते थे। उनकी चिन्ता दूर करने व बालमुकुन्द जी का ऋण हलका करने के उद्देश्य से मैंने व मेरे छोटे भाई प्यारेलाल जी ने (जो उस समय डिस्ट्रिक्ट व सेशंस जज के पद पर थे) पैतृक सम्पत्ति में दोनों के पूरे भाग को दान रूप से एक रजिस्टरी हिबानामा लिखकर पिताजी व बालमुकुन्द के नाम अन्तरित (मुन्तकिल) कर दिया। पिताजी की चिन्ता जाती रही। बालमुकुन्द ने इस जायदाद से व मौरूसी घर को बन्धक रख कर अपने सब कर्जे को चुकाने की उचित व्यवस्था करदी। पिताजी का कुछ समय पीछे अर्थात ३ मार्च सन् १६२६ को दमे के रोग से प्राणान्त हो गया। उस समय मैं टिहरी में था। पर भाई प्यारेलाल व बालमुकन्द उनके पास थे।

अ० (६६ ख)—बालमुकुन्द की वर्त्तमान आर्थिक दशा— बाल मुकन्द जी की आर्थिक दशा सुधर गई। उन के ४ पुत्र थे। सबसे बड़े पुत्र किशनस्वरूप का पागल कुत्ते के काटने से हाइड्रोफोबिया रोग से प्राणान्त हुआ। उनके शेष ३ पुत्र मगन स्वरूप, चन्द्र स्वरूप व ज्ञानस्वरूप अम्बा फैक्टरी व यू० पी० हैण्डलूम फैक्टरी के नाम से देशी कपड़े के दो कारखानों के स्वामी होकर बड़ी सफलता से कपड़े का व्यवसाय कर रहे हैं।

अ० (६६ ग)—शान्ति स्वरूप व कान्ति स्वरूप का व्यवसाय— मोटर लौरी व्यवसाय में भारी हानि होने के बाद वह बन्द कर दिया। शान्ति स्वरूप मेरे पास टिहरी चले गये जहां उनको चीफ कोर्ट के आधीन जनरल सुपरिंटेन्डण्ट का काम ७५) मा०

वेतन पर मिल गया। दो वर्ष पीछे महाराजा साहब ने उनको १००) मा० पर डिप्टी कलक्टर नियत करके रवांई परगने में भेज दिया। वहाँ दो वर्ष काम करके वे उत्तर काशी इलाके के डिप्टी-कलक्टर रहे। सन् १९३३ में कई कारणों से शान्ति स्वरूप त्याग पत्र देकर टिहरी राज्य से वापिस चले आये। सन् १९३५ में शान्ति स्वरूप व उसके छोटे भाई कान्ति स्वरूप ने जबलपुर में देहली क्लाथ हौस के नाम से संयुक्त रूप से कपड़े का कारबार किया। सन् १९४५ में कान्तिस्वरुप उस काम में अलग होकर जयपुर आगये और अब वे यहां डा० प्रकाशस्वरूपजी की पौली क्लिनिक नामक दवाओं की दूकान का प्रबन्ध करते हैं।

अ० (६६ घ)–शान्तिस्वरूप का जबलपुर में देहावसान– शान्तिस्वरूप ने जबलपुर में अपना काम जारी रक्खा। कुछ वर्ष से उनको दमे का रोग होगया था जो सन् १९५२ में बढ़ गया। उनकी पुत्री डा० सावित्री M. B B. S. अपने पति डा०प्रबोध चन्द्र गौड M. B. B. S. के साथ भिलसा में रहते थे। दोनों ने कई मास तक बड़ी लग्न के साथ इलाज किया। अन्त में तार द्वारा सूचना पाने पर जयपुर से डा० प्रकाशस्वरूपजी भी जबलपुर पहुँच गये। परन्तु रोग बढ़ गया था। अन्त में १८ अगस्त सन् १९५२ के प्रातःकाल शान्तिस्वरूपजी ने शरीर छोड़ दिया। उस समय उनकी आयु ५४ वर्ष की थी। उनकी ३ अविवाहित कन्या व २ पुत्र हैं। सबसे बड़े पुत्र गिरीशचन्द्र जो लगभग २२ वर्ष की आयु के हैं और शान्तिस्वरूप के साथ ही दूकान का काम करते थे अब घर व दूकान दोनों का काम चला रहे हैं।

अ० (६८)–टिहरी में मेरा कार्य मुख्यतया न्याय संबंधी Judicial–टिहरी में मैं जब चीफजज नियत होकर गया था कुछ मास पीछे **जुडीशल मेम्बर** भी नियत होगया।

मेरा मुख्य कार्य न्याय सम्बन्धी Judicial था। जब मैं वहां पहुँचा तो चीफकोर्ट का काम अस्थायी रुप से ३ जज मिलकर करते थे। मेरे जाने के कुछ दिन पीछे ही वे हटा दिये गये और सारा काम अकेले मेरे सुपुर्द हुआ। काम वही था जो अंगरेजी इलाके में डिस्ट्रिकट जज व सेशन्सजज व डिस्ट्रिकट मैजिस्टेट को करना होता है। सीगे दीवानी, फौजदारी व माल तीनों प्रकार का काम था । रियासत में ६ डिप्टीकलक्टर, २ जागीरदार व कुछ आनरेरी मजिस्ट्रेट थे वे भी तीनों सीगे का काम करते थे। उनके फैसलों के विरुद्ध अपीलों को मैं सुनता था। मेरे फैसलों के विरुद्ध अपीलें हजूर कोर्ट में जाती थी अर्थात् उनको श्री महाराजा साहब सुनते थे।

अ०(६९)–कानून व कायदे (नियम) बनाने का काम-प्रतिनिधि सभा Representative Assembly की स्थापना—मेरे जाने से पूर्व अदालतों के लिये कोई कानून आदि रियासत की ओर से नहीं थे। अदालतों को आज्ञा थी कि यथासंभव ब्रिटिश इलाके के कानूनों का अनुसरण करें, परन्तु अपने फैसलों में उनका हवाला या प्रमाण न देवें। इस प्रकार अदालतों को खुली छुट्टी थी कि उनका अनुसरण जहां तक व जिस प्रकार चाहें करें

इस प्रणाली के दोष स्पष्ट ही हैं। श्री महाराजा साहब ने मेरे सुझाव पर मुझको रियासत के लिये कानून बनाने की आज्ञा दी। सन् १६२३ ई० (सं० १६८०) में मेरी सलाह से एक कानून बनाने वाली सभा Legislative Body भी "टिहरी गढ़वाल राज्य प्रतिनिधि सभा" नाम से स्थापित होगई जिसमें धीरे धीरे सब प्रकार के कानून बनकर राज्य में प्रचरित होगये। जब तक ऐसा न होसका तब तक अस्थायी नियम सरक्युलर आदि से जो मैंने ही बनाये थे काम लिया गया। आरंभ में सभा में प्रजा के चुने हुए सदस्य कम ही रखे जाते थे। सभा को कानून बनाने के सिवाय राज्य प्रबन्ध में सलाह देने के भी कुछ सीमित अधिकार थे।

अ०(७०)—शिक्षा विभाग का कार्य—मेरी नियुक्ति आंरभ में चीफजज के पद पर हुई थी। कुछ मास पीछे कौंसिल Executive Council में स्थान रिक्त होने पर मैं जुडिशल मिनिस्टर भी नियत होगया। इस पद के साथ न्याय विभाग के अतिरिक्त शिक्षा विभाग भी था। उस समय रियासत में एक हाई स्कूल दो कन्या पाठशाला लगभग ६० प्राइमरी स्कूल थे। दो संस्कृत पाठशालायें भी थीं। यह संख्या बहुत कम ही थी। मेरी सिफारिश पर कुछ नये प्राईमरी स्कूल प्रति वर्ष खोले जाते थे परन्तु शिक्षा की उन्नति की ओर दरबार का बहुत कम ही ध्यान था।

अ०(७१)–मन्दिरों का प्रबंध—रियासत टिहरी गढ़वाल में **मन्दिर व तीर्थ** बहुत हैं क्योंकि वह **उत्तराखण्ड व तपोभूमि** का भाग है। जहां दो नदियों का संगम होता है वह प्रयाग कहलाता है इस प्रकार गंगा के किनारे जहां उसमें दूसरी नदियां आकर मिलती है, **विष्णु प्रयाग, नन्द प्रयाग, कर्ण प्रयाग, रुद्र प्रयाग,** है और जहां भागीरथी भी शामिल होकर पांचों गंगा एक हो जाती हैं वह देवप्रयाग है। इसी प्रकार गंगा व यमुना का संगम जो इलाहाबाद में होता है **महाप्रयाग** कहलाता है।

गंगा नदी का उद्गम **गंगोत्तरी** और यमुना का उद्गम **यमुनोत्तरी** ये दो बड़े तीर्थ गढ़वाल में हैं। गंगा के किनारे **उत्तरकाशी** भी एक प्रसिद्ध तीर्थ है, उसका यह नाम इसलिये हुआ कि पूर्व काशी (बनारस) के समान यहां भी गंगा का बहाव दक्षिण के बजाय उत्तर की ओर है और वह **उत्तरवाहिनी गंगा** कहलाती है।

बहुत से मन्दिरों को दरबार से नियत वार्षिक बंधान मिलता था। कुछ ऐसे हैं जिनका पूरा व्यय दरबार देता था। **बदरीनाथ व केदार नाथ** के प्रसिद्ध तीर्थ रियासत की सीमा से बाहर जिला गढ़वाल के भीतर थे। परन्तु गुरखा युद्ध से पहले जिसको लगभग १५० वर्ष हुए वे गढ़वाल राज्य के भीतर ही थे। वास्तव में उस समय जिला गढ़वाल भी गढ़वाल राज्य का भाग था। गुरखा युद्ध के बाद दो भाग हो गये। जिला गढ़वाल अलग हो



श्री गंगाप्रसाद
टिहरी गढ़वाल राज्य की सेवा के समय

सन् १९३२ ई०

सं० १९८९



श्री गंगाप्रसाद
ब्रिटिश सर्विस के समय गोरखपुर देवरिया में
सं० १९६३–१९७१ * सन् १९०६–१९१४

जाने के बाद के दरबार ने यत्न किया कि जिस प्रदेश में ये प्रसिद्ध दो तीर्थ स्थित हैं, वह फिर रियासत में शामिल हो जाय पर इसमें सफलता न हुई। तो भी प्राचीन प्रथा के अनुसार पूर्वोक्त दोनों मन्दिरों पर धार्मिक अधिकार श्री महाराजा साहब टिहरी का ही रहा। बदरीनाथ व केदारनाथ दोनों मन्दिरों के रावल की नियुक्ति महाराजा साहब करते हैं और वे ही उनको तिलक देते हैं तथा दोनों मन्दिरों के प्रति वर्ष पट खुलने व बन्द होने का समय भी महाराजा साहब नियत करते हैं।

इसलिये मन्दिरों के प्रबन्ध का कार्य्य रियासत में बड़े महत्व का था। जुडिशल मिनिस्टर के पद के अन्तर्गत यह कार्य्य भी मेरे सुपुर्द किया गया, मैंने दरबार की आज्ञा से इस विभाग में कई बड़े सुधार किये जिनका कुछ वर्णन करना आवश्यक है।

अ०(७२)—साधु सुधार विधान—मैंने वहाँ जाने पर शीघ्र ही एक छोटा सा क़ानून "साधु सुधार विधान" के नाम से प्रचारित कराया जिसके अनुसार किसी नाबालिग अर्थात १८ वर्ष से कम आयु के बालक वा बालिका को चेला बनाना अपराध माना गया है, जिसके लिये वह साधु जो बालक को चेला बनावे अथवा साथ रक्खे दंडित होता है, और यदि कोई बालक अपने माता पिता वा संरक्षक की अनुमति से साधु बनाया जाय तो संरक्षक भी दण्डनीय होता है।

अ० (७३)—तीर्थ सुधार विधान—यह विधान बड़े महत्व का है। इसके अनुसार सब घोषित मन्दिरों के (जिनमें सभी

प्रमुख मन्दिर आजाते हैं) पुजारियों पर ऐसे उपयोगी नियम लागू किये गये जिनमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया जाता है—

(क) प्रत्येक पुजारी आय व्यय का हिसाब रक्खे जिसकी राज्य की ओर से जांच होगी।

(ख) प्रत्येक पुजारी ३ वर्ष के भीतर एक परीक्षा में उत्तीर्ण होवे जिसमें नित्य धर्म आदि की शिक्षा दी जाती है।

(ग) पुजारियों के सन्तान या शिष्य (अर्थात् उत्तराधिकारी) शिक्षित होने चाहियें, अन्यथा वे पुजारी नियत नहीं होंगे।

(घ) पंडाओं के लिये भी एक परीक्षा नियत की गई और यात्रियों से सद्व्यवहार के लिये नियम रक्खे गये।

(ङ) इसके सिवाय मन्दिर व धर्मशाला व यात्रा मार्ग की दूकानों की सफाई आदि के लिये भी कायदे बनाये गये।

इस विधान का रियासत के बाहर भी अच्छा मान हुआ। स्वर्गीय पूज्य पं० मदनमोहन मालवीयजी ने इसकी प्रतियाँ बहुत से हिन्दू राजा महाराजाओं के पास भिजवाई थीं। मुझको विश्वस्त सूत्र से ज्ञात हुआ कि सन् १९४७–४८ में देशी राज्यों के अन्त होने पर भी ये दो विधान गढ़वाल में चालू रक्खे गये थे।

अ० (७४)—बद्रीनाथ विधान—युक्त प्रान्त की सरकार ने बदरी नाथ मन्दिर के सुप्रबन्ध के लिये एक कानून पास कर

के उसके लिए एक कमेटी नियत करदा है। उस विधान के अनुसार मन्दिर का पुजारी (जो रावल कहलाता है) और जो पहले मन्दिर का मुख्य प्रबन्धक होकर उसकी आय का चोर अपव्यय करता था, अब केवल पूजा का कार्य करता है जिसके लिये उसको २८०) मा० वेतन मिलता है। मन्दिर के प्रबन्धक (Manager) को कमेटी नियत करती है। इससे मन्दिर की आय का बहुत बड़ा भाग शिक्षा व सफाई आदि उपयोगी कार्यों के लिये बच रहता है। बद्रीनाथ का धार्मिक प्रबन्ध प्राचीन प्रथा के अनुसार श्री महाराजा साहिब टिहरी के अधिकार में रहा। इस लिये पूर्वोक्त विधान दरबार की अनुमति से तैयार किया गया। इस कार्य्य के लिये मैंने व दरबार के चीफ सेक्रेटरी श्री पं० इन्द्रदत्त सकलाणी ने लखनऊ जाकर और श्री माननीय गोविन्द बल्लभ पन्त व श्री माननीय सम्पूर्णानन्दजी से मिलकर विधान के के बनाने में भाग लिया था।

अ० (७५)—कोल्हापुर का शिक्षा कार्य—जैसा कि अनुच्छेद ६४ में कहा गया है कोल्हापुर का राजाराम कालिज, हाई स्कूल, व गुरुकुल आदि श्री महाराजा छत्रपति शाहूजी ने सन् १९१९ में आर्य प्रतिनिधि सभा युक्तप्रान्त के सुपुर्द कर दिये थे और उनके प्रबन्ध के लिये सभा ने एक कमेटी बनाई थी जिसका मन्त्री मैं था। सन् १९२२ में मैं टिहरी रियासत की सेवा स्वीकार करने पर भी इस कार्य को करता रहा। परन्तु दुर्भाग्य से सन् १९२२ में ही श्री महाराजा शाहू साहब का असा-

मयिक स्वर्गवास होगया और उनके सुपुत्र श्री महाराजा राम-जस छत्रपत्ति गद्दी पर बैठे। कुछ समय तक सभा का प्रबन्ध चालू रहा। परन्तु सन् १९२६ में १८-१-२६ की आज्ञा द्वारा कोल्हापुर दरबार ने उक्त संस्थाओं को अपने प्रबन्ध में ले लिया और उनसे फिर सभा का कोई संबन्ध न रहा। श्री पं० बालकृष्ण जी एम० ए० जो सभा के भेजे हुए प्रिंसिपल थे और कुछ अन्य अध्यापक भी कुछ समय तक उक्त संस्थाओं में कार्य करते रहे। सन् १९२६ में आर्य प्रतिनिधि सभा युक्त प्रान्त से कोल्हापुर आर्य समाज का सम्बन्ध भी नहीं रहा, परन्तु कोल्हापुर में आर्य-समाज अब भी है।

अ० (७६)-अन्य आर्य सामाजिक कार्य-सन् १९२५ ई. (सं० १९८१ वि०) में मथुरा नगर में ऋषि दयानन्दकी जन्म शताब्दि बड़े समारोह से मनाई गई। लगभग ३ लाख मनुष्य इकट्ठे हुए थे, प्रबन्ध बहुत उत्तम रहा जिस का श्रेय श्री महात्मा नारायण स्वामी को था जो कार्यकर्त्ता प्रधान थे, अन्त में जनता की ओर से उनको एक अभिनन्दन पत्र भी दिया गया। नगर-कीर्तन विशेष द्रष्टव्य था। इस अवसर पर एक सर्व धर्म सम्मेलन हुआ जिसके सभापति का कार्य मैंने किया था।

सन १९३३ (सं० १९९०) में अजमेर में ऋषि दयानन्द की निर्वाण अर्ध शताब्दि का उत्सव हुआ। मैंने पूरे सप्ताह वहाँ रह कर उसमें भागलिया। इस अवसर पर कुछ विशेष व्याख्यान Special Lecture अंगरेजी में तय्यार कराये गये थे, मैंने The

Inner man and the Inner World अर्थात् "पंचकोष व सूक्ष्म जगत्" विषय पर व्याख्यान अंगरेजी में तय्यार किया था जो जनता की इच्छानुसार हिन्दी में दिया गया, और पीछे हिन्दी में लिखा जाकर "पचकोष व सूक्ष्म जगत्" नाम से आर्य प्रतिनिधि सभा युक्तप्रान्त की ओर से प्रकाशित हुआ। अंगरेजी का व्याख्यान ४ अन्य व्याख्यानों के साथ Aryan Philosophy के नाम से श्री केशवदेव ज्ञानीजी ने मदरास आर्य समाज की ओर से छपवाकर प्रकाशित किया था।

सन् १९३७ ई० में मेरठ नगर में युक्त प्रान्त आर्य प्रतिनिधि सभा की जयन्ती का उत्सव मनाया गया। मैं स्वागत सभा का अध्यक्ष नियत हुआ। मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं था। मेरा कार्य अधिकांश में श्री रा० सा० मोतीलाल जी ने किया जो कार्यकर्त्ता प्रधान थे। स्वागत भाषण मैंने ही दिया। स्वागत मन्त्री श्री बाबू कालीचरणजी थे जिन्होंने बड़ी लगन से अपना काम किया। उत्सव आनन्द पूर्वक होगया।

अ० (७७)—टिहरी में मेरे स्वास्थ्य की दशा— टिहरी रहते हुए मेरा स्वास्थ्य साधारणतया अच्छा ही रहा। परन्तु सन् १९२८ में जब मैं एक सरहद के झगड़े में विकट पहाड़ों में दौरे पर था तो मुझको पेचिश का रोग लग गया जो एक या दो वर्ष रहा। Appendicitis का सन्देह हुआ। लखनऊ किंग जार्ज मेडीकल अस्पताल में ओपरेशन कराने की तय्यारी भी होगई थी, पीछे डा० बेलीरामजी की सलाह से जो टिहरी रियासत के

चीफ मेडिकल अफसर और मेरे परम मित्र तथा पुराने चिकित्सक थे, वह अनावश्यक समझा गया। ६।१।२६ को लखनऊ मेडिकल कालिज में पेट व आंतों का ऐक्सरे कराया गया। रोग वास्तव में Colitis (बड़ी आंत का सूजन) पाया गया जो पुराना Chronic रूप धारण करके कई वर्ष तक तक बना ही रहा।

सन् १६३१ ई० में जब मैं हरद्वार में था तो मुझको अर्श Piles का रोग होगया। खून नहीं जाता था, मस्से होगये, यह रोग भी पुराना होकर न्यूनाधिक बना ही रहा है।

अ० (७८)–श्री महाराजा साहब से अवकाश की माँग– सन् १६३६ में मेरा स्वास्थ्य अधिक गिर गया। चीफ कोर्ट के सारे कार्य के सिवाय जुडिशल मिनिस्टर के पद के कारण कौंसल का भी पर्याप्त काम करना होता था जिसमें शिक्षा सम्बन्धी काम शामिल था। मैंने सन् १६३६ में श्री महाराजा साहब से काम छोड़ने की इक्छा प्रकट की। श्री महाराज ने बड़ी सहृदयता से मुझको कम से कम २ या ३ वर्ष और रहने के लिये अनुरोध किया और आशा दिलाई कि टिहरी में शीघ्र हाईकोर्ट स्थापित होगा जिससे मेरा काम बहुत हलका हो जायगा। उसकी स्थापना के १ या १॥ वर्ष पीछे मुझको अवकाश देने का आश्वासन दिया जिसको मैंने स्वीकार किया।

अ० (७६)–टिहरी रियासत में हाईकोर्ट की स्थापना– अगस्त सन् १६३८ में श्री महाराजा साहब के जन्म दिवस के शुभ अवसर पर टिहरी में हाईकोर्ट की स्थापना होगई। जिसमें ३ जज

नियुक्त हुए। मैं चीफ जस्टिस के पद पर रक्खा गया। २ अन्य जज नियत हुए, एक श्री रा० ब० राधाकृष्णदास रिटायर्ड डिस्ट्रिक्ट व सेशन्स जज यू० पी०, दूसरे श्री मुकन्दीलाल बैरिस्टर एट लॉ जो युक्तप्रान्त की लेजिसलेटिव ऐसेम्बली के उपप्रधान रह चुके थे।

मेरा काम पहले की अपेक्षा बहुत हलका हो गया क्योंकि हाईकोर्ट में केवल अपील सुने जाते थे। अन्य कार्य डिस्ट्रिक्ट सेशन्स जजों के पास चला गया।

अ० (८०)–टिहरी रियासत से अवकाश प्राप्त करना— अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार हाई कोर्ट की स्थापना से १॥ वर्ष पीछे मैंने श्री महाराजा साहब से पूर्ण अवकाश प्राप्ति की फिर प्रार्थना की। इस बीच में कुछ समय के लिये मुझको चीफ जस्टिस के पद के सिवाय Chief Exceutive Officer अर्थात् दीवान पद का कार्य भी करना पड़ा था। श्री महाराजा साहब ने मेरी प्रार्थना स्वीकार करते हुए मेरी सेवाओं की बहुत प्रशंसा की, मेरे जाने पर दुःख प्रकट किया और मुझको दस हजार रुपये की ग्रेचुइटी Gratuity प्रदान की। सन् १६३६ अक्टूबर मास के अन्त में विजयदशमी के शुभ अवसर पर मैंने दरबार की सेवा से पूर्ण अवकाश प्राप्त किया, मैंने कुल १७॥ वर्ष टिहरी राज्य की सेवा की। टिहरी छोड़ते समय वहां की जनता ने मेरा जो सम्मान किया उसको मैं कभी नहीं भूल सकता। टिहरी म्युनिसिपल बोर्ड कमेटी, हाई स्कूल, संस्कृत पाठशाला और प्रान्त पचायत आदि संस्थाओं ने मान पत्र प्रदान किये और कई दिवस तक इस उपलक्ष में सहभोज चाह पार्टी आदि होते रहे।

भाग २

आर्य्य विरक्त आश्रम में निवास और सेवा कार्य

६ खण्ड—विरक्त आर्य आश्रम ज्वालापुर में निवास

अ० (८१)-आर्य विरक्त आश्रम ज्वालापुर में आगमन-मैं टिहरी से चलकर अपनी सहधर्मिणी श्री प्रेमदेवी सहित ज्वालापुर (हरद्वार) सन् १६३६ के अक्टूबर से आकर आर्य विरक्त आश्रम में रहने लगा जो वानप्रस्थाश्रम के नाम से प्रसिद्ध है। सन् १६३६ में मेरी तथा मेरे छोटे भाई स्व० प्यारेलालजी की संयुक्त कुटी यहाँ बन चुकी थी। श्री प्यारेलाल जी तभी से अपने परिवार सहित उस में निवास करते थे। अक्टूबर सन् १६३६ से सन् १६४८ के नवम्बर मास तक (जब स्वास्थ्य की दशा अधिक हीन हो जाने के कारण मुझको अपने पुत्र डा. प्रकाशस्वरूप रस्तोगी M. B. B. S. के पास जाकर रहना पड़ा) मेरा निवास स्थायी तौर से इसी आश्रम में रहा।

अ० (८२)-आश्रम का कुछ परिचय— इस आश्रम की स्थापना सन् १६२६ में स्व. श्री म० नारायण स्वामी जी ने की थी। योजना कई वर्ष पहले से विचाराधीन थी जिसमें मेरा भी सहयोग था। स्थान तलाश व पसन्द करने में भी मैंने भाग लिया था।

आश्रम के आजीवन अध्यक्ष महात्मा नारायण स्वामीजी थे, प्रधान के अधिकार भी अध्यक्ष ही को प्राप्त थे। कई वर्ष तक मैं उप प्रधान रहा और श्री अध्यक्ष जी ने प्रधान के सब अधिकार (अध्यक्ष के विशेष अधिकारों को छोड़ कर) मुझ को दे दिये थे। उसके बाद श्री भक्त सुन्दरदासजी उपप्रधान रहे जो बड़े योग्य और शीलयुक्त वानप्रस्थी हैं।

आश्रम ने भक्त सुन्दरदासजी की सहायता से बहुत सी भूमि आश्रम के पास ही कनखल की सड़क और नहर के बीच खरीद कर लगभग २०० प्लाट या टुकड़े बनाकर वहां अर्य्य नगर बसाने के उद्देश्य से बेची जिस में लगभन २० हजार रुपये का आश्रम को लाभ रहा, जो आश्रम की एक स्थिर संपत्ति होगई।

अ० (८३) आर्य-विरक्त आश्रम का दयानन्द संन्यासी वानप्रस्थ मंडल से संबन्ध—सन् १९४४ में महात्मा नारायण स्वामी ने दयानन्द संन्यासी वानप्रस्थ मंडल की स्थापना करके उसकी कानून के अनुसार रजिस्टरी कराई। मैं भी उसका एक सदस्य हूँ। आरंभ में ११ सदस्य थे। वानप्रस्थ आश्रम अलग संस्था के रूप में अपनी अलग रजिस्टरी कराने का विचार कर रहा था। परन्तु आपसी समझौता होकर मंडल में उस की ओर से ८ सदस्य बढ़ाये जाकर वह मंडल की ही शाखा होगया। कुछ आश्रम वासियों को यह पसन्द नहीं था और यह मनोवृत्ति कुछ वर्ष तक किसी न किसी रूप में प्रकट होती रहती है। स्वामी वेदानन्द तीर्थ जी जो श्री नारायण स्वामी जी के स्वर्गवास के

पीछे मंडल के अध्यक्ष चुने गये पहले ५ वर्ष के लिये नियत हुए थे। पीछे मंडल के नियमों में परिवर्तन करके स्वामी जी आजीवन अध्यक्ष माने गये। कुछ आश्रम वासियों को इस से घोर विरोध था। जिस के लिये छपे मंतव्य आर्य समाजों मे भेजे गये और श्री स्वामीजी से एक प्रकार असहयोग किया गया।

अ० (८३ क)—मंडल तथा वा० आश्रम ज्वालापुर के झगड़े का समझौता—दयानन्द संन्यास वानप्रस्थ मण्डल व व वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर के बीच झगड़ा कई वर्ष तक चलता रहा जैसा आर्य जनता को मालूम है। फौजदारी मुकद्दमे (जावता फौजदारी दफा १०७ व दफा १४५ के) हुए। माल की अदालत में भी मुकद्दमे चले। आश्रम की जमीन सन् १६२८ में स्व० श्रीनारायण स्वामीजी ने खरीदी थी। पर जैसी उनकी नीति थी जमीन की रजिस्टरी "व हक श्री आर्य प्रतिनिधि सभा यू० पी० व अहतमाम श्री पूज्यनारायण स्वामीजी प्रधान सार्वदेशिक सभा देहली वास्ते वानप्रस्थ आश्रम के" कराई गई। श्रीनारायण स्वामीजी के स्वर्गवास होने पर स्वामी वेदानन्दजी ने जो उनके स्थान में मण्डल के अध्यक्ष हुए अपना नाम जमीन के हक में दर्ज कराया। इस पर आर्य प्रतिनिधि सभा ने उजरदारी की जो मंजूर हुई और स्वा० वेदानन्दजी का नाम काट कर श्री पं० धुरेन्द्र शास्त्रीजी प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा युक्त प्रान्त का नाम दर्ज हुआ। स्वामी वेदानन्दजी ने इसके विरुद्ध अपील की जो ख़ारिज हुई। फौजदारी के मुकद्दमे कुछ समय तक चलते रहे।

प्रसन्नता की बात है कि श्री कविराज हरनामदासजी ने जो अब मण्डल के मन्त्री हैं बड़ी योग्यता और परिश्रम से दोनों पक्ष के बीच समझौता करा दिया जो स्टाम्प के कागज पर लिखा गया, और ३० नवम्बर १८५२ के मडल के विशेष अधिवेशन में स्वीकृत होगया। असल झगड़ा उस धन के बाबत में था जो आर्य नगर के प्लाटों की बिकरी से आया और मंडल के पास था, जमीन के खरीदने व प्लाट तय्यार करने व उनके बेचने में वानप्रस्थ आश्रम के सदस्यों का अवश्य बहुत भाग था। जो समझौता किया गया उसका सारांश एक १ मार्च सन् १८५३ के पत्र के अनुसार (जो श्री कविराज हरनामदासजी ने मेरे पास भेजा) यह है कि ३२०००) की निधि में से जो इस समय मंडल के पास थी, १२०००) आश्रम को दे दिया जाय व २०,०००) से हरद्वार में अच्छे स्थान पर हरद्वार आर्य मन्दिर के लिये जमीन खरीदी जाय, उसमें १०,०००) या अधिक लगाकर पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा आर्य मन्दिर बनवा देवे जो उसी सभा की संपत्ति होगा। इस प्रकार आश्रम को अपनी आवश्यकताओं के लिये पर्याप्त धन मिल जायगा, और हरद्वार में जो एक आर्य्य मंदिर की बड़ी आवश्यकता थी वह भी पूर्ण हो जायगी।

श्री कविराज हरनामदासजी के १० दिसम्बर १८५३ को जो पत्र मुझ को लिखा उससे ज्ञात हुआ कि श्री प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश ने एक तार और पत्र ता० ६ जुलाई १८५३ को भेज कर श्री कविराजजी को पोस्ट आफिस से उस रुपये का

निकालना जो कैश सर्टिफिकेट आदि द्वारा जमा था रोक दिया। इस कारण उपर्युक्त समझौते की शर्तों के अनुसार काररवाई न हो सकी, और समझौते का पालन अब तक नहीं हो सका। कार्रवाई रुकी हुई है। आशा करनी चाहिये कि शान्तिपूर्वक समझौता होकर उपर्युक्त विवाद पूर्णतया समाप्त हो जायगा।

अ (८४)–मेरी दक्षिण यात्रा—सन् १६४० के जनवरी मास में ही मैं व मेरे भाई श्री प्यारेलालजी दक्षिण यात्रा को गये। हमारा मुख्य अभिप्राय पांडीचेरी जाने और वहां कुछ मास श्री अरविन्द के प्रसिद्ध योगाश्रम में रहने का था। मैं उस समय श्रीमती सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा International Aryan League का प्रधान था। इस लिये पहले हम भूपाल हैदराबाद, व शोलापुर गये जहां मुझको सभा का कुछ कार्य्य करना था। उसके बाद हम दोनों ने दक्षिण के बहुत से प्रसिद्ध तीर्थ व स्थान देखे, अर्थात् मैसूर, कोचीन, त्रावनकोर, कन्याकुमारी, मदुरा, तंजोर, और चिदाम्बरम।

१३ से १५ फरवरी तक हम दोनों तिरुवन्नमलय में रमण महर्षि के आश्रम में रहे जो श्री अरविन्द को छोड़कर दक्षिण के शेष सब योगियों में अधिक मान्य और उच्च श्रेणी के योगी माने जाते थे, कुछ योरप व अमरीका के लोग भी उनके दर्शन को आते थे। उनके दर्शन पहली बार मैंने सन् १६३६ में किये थे जब मैं अपनी सहधर्मिणी के साथ दक्षिण यात्रा के लिये गया था। १५ अप्रैल सन् १६५० को महर्षि का स्वर्गवास हो गया।

तिरुवन्नमलय से मैं व श्री प्यारेलालजी पांडीचेरी गये जहां श्री अरविन्द का सुप्रसिद्ध आश्रम है और जहां हम ६ दिन ठहरे। इसका वर्णन कुछ विस्तार के साथ पीछे दिया जायगा। (देखो अनुच्छेद ६७ से १०० तक)। पांडोचेरी से लौटते हुए हम दोनों शान्ति निकेतन गये जो कि स्व० श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर का जगत् प्रसिद्ध शिक्षणालय है। वास्तव में इस स्थान को उनके पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर ने जो आदि ब्राह्म समाज के आचार्य्य थे एकान्त सेवन के लिये पसन्द किया था पीछे गुरुदेव श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर की ओर से यहां एक विद्यालय स्थापित किया गया जिसमें साधारण शिक्षा के सिवाय कला व संगीत की शिक्षा दी जाती है और चीनी, तिब्बती संस्कृत, पाली आदि भाषाओं के साहित्य की खोज Resedrch का काम होता है। अब वह एक यूनिवर्सिटी के रूप में विश्व भारती नाम से विख्यात है।

शान्ति निकेतन से लौटकर मैं व श्री प्यारेलाल उज्जैन गये जहां ८ अप्रेल से ११ अप्रेल सन् १९४० तक आध्यात्मिक मंडल का वार्षिक समारभ था। यह मण्डल लगभग २५ या ३० वर्ष से स्व० पं० दुर्गाशंकर नागर का अध्यक्षता में स्थापित था और उनके संपादत्व में कल्पवृक्ष मासिक पत्र भो प्रकाशित होता रहा जिसमें आध्यात्मिक विषयों पर अच्छे लेख होते हैं। इस मण्डल की शाखायें कई अन्य स्थानों पर है और हर शाखायें इसी प्रकार आध्यात्मिक रीति से रहन सहन की शिक्षा और रोगों

की चिकित्सा होती है। दो वर्ष हुए श्री दुर्गाशंकर नागर का स्वर्गवास हो गया। परन्तु उनके सुयोग्य पुत्र श्री बालकृष्ण नागर के संचालन में मंडल में चिकित्सा कार्य और "कल्प वृक्ष" का प्रकाशन पूर्ववत जारी है।

अ० (८५)–हरिश्चन्द्र वंशीय महासभा के लखनऊ अधिवेशन में सभापतित्व—मैं जातीय महासभाओं को वस्तुतः देश के लिये हानिकारक मानता हूँ, जैसा कि मैंने अपनी पुस्तक Caste System तथा उसके हिन्दी अनुवाद "जातीय भेद" में स्पष्ट लिखा है। मेरा जन्म रस्तोगी जाति में हुआ जो अपने को हरिश्चन्द्र के वंश में होना मानते हैं। उनकी महासभा सन् १९२० ई० से स्थापित है, मैंने आरम्भ ही से उसमें अथवा वैश्य महासभा में कभी भाग नहीं लिया।

रस्तोगियों की सबसे अधिक संख्या लखनऊ नगर में हैं और वे सामाजिक सुधार में बहुत पिछड़े हुए हैं। वहां कुछ सुशिक्षित सुधार विचार के भी सज्जन हैं। उनमें प्रमुख बाबू वल्लभदास बी० ए० हैं जो बहुत सुयोग्य और उदार विचार के सज्जन हैं। उन्होंने सन् १९४१ में मुझ से अनुरोध किया कि यदि मैं सम्मेलन का प्रधान होना स्वीकार करूं तो लखनऊ में हरिश्चन्द्र वंशीय सम्मेलन होकर बहुत कुछ सामाजिक सुधार हो सकता है। मेरे विचारों को वे जानते थे, मैंने कहा कि मैं अपने विचारों को आगे रख कर यह चाहूँगा कि सम्मेलन में अन्तर्जातीय विवाहों के समर्थन में प्रस्ताव स्वीकृत हो जावे। लखनऊ के बहुत से रस्तोगी

इस के विरोधी ही थे। पर बाबू बल्लभदास ने अपने कुछ मित्रों की सलाह लेकर ऐसा प्रस्ताव पास हो जाने की आशा दिलाई भाई प्यारेलालजी की भी दृढ़ इच्छा थी कि मैं लखनऊ के सम्मेलन का प्रधान होना स्वीकार करलूं। मैंने स्वीकार कर लिया। २६ दिसम्बर से २८ दिसम्बर सन् १९४१ तक लखनऊ में सम्मेलन हुआ। बा० वल्लभदास के उद्योग से वहुत स्थानों के प्रतिनिधि आये। अतिथियों के स्वागत का प्रबन्ध भी उन्हीं के हाथ में था और उनके भोजनादि के व्यय का विशेष भार भी उन्होंने स्वयं सहा। सम्मेलन बड़े समारोह से हुआ। मैंने जो भाषण दिया वह छप चुका है, मैंने अपने विचार बहुत स्पष्टता से रखे। अन्तर्जातीय विवाह के विरोध में फरुखाबाद आदि स्थानों के प्रतिनिधियों का बड़ा दल आया था। प्रस्ताव बहुमत से गिर गया। इसमें बा० वल्लभदास का कुछ दोष न था, उनके मित्रों ने जिनमें गवर्नमेण्ट संस्कृत कालिज बनारस के प्रिंसिपल व शास्त्री आचार्य आदि गवर्नमेंट संस्कृत परीक्षाओं के रजिस्ट्रार श्री डाक्टर मंगल देव शास्त्री M.A., D. Phil, (Oxon) जैसे सुयोग्य विद्वान प्रस्ताव के समर्थकों में थे विवाद में भाग लिया। सभा में बहुत चहल पहल रही। महिला सम्मेलन भी साथ ही साथ हो रहा था। उसमें भी इस विषय पर घोर विवाद हुआ। कुछ स्त्रियों का कहना था कि स्त्रियों में बहुमत का झुकाव प्रस्ताव के अनुकूल ही मालूम होता था। पर सभानेत्री ने कुछ कारणों से इस प्रस्ताव पर मत (वोट) लेना उचित नहीं समझा और

उसको स्थगित कर दिया। मुख्य सम्मेलन में फर्रुखाबाद आदि स्थानों तथा लखनऊ के भी विरोधीदल की बड़ी संख्या थी। इसलिये प्रस्ताव बहुमत से गिर गया, मेरा जैसा कि पहले से निश्चय था मैंने दूसरे ही दिन महासभा से त्यागपत्र दे दिया क्योंकि प्रश्न सिद्धान्त का था। परन्तु इस आन्दोलन का लखनऊ के रस्तोगियों पर अच्छा ही प्रभाव पड़ा। सम्मेलन के बाद लखनऊ के रस्तोगियों में कई विधवा विवाह होगये जो लखनऊ में एक अनहोनी बात समझी जाती थी। इस प्रकार सम्मेलन के फलस्वरूप वहां बहुत कुछ सामाजिक जागृति हो गई।

अ०(८६)–मेरे पुत्रों के अन्तर्जातीय विवाह। सन् १६-४१ में ३ जुलाई को मेरे पुत्र डा० प्रकाश स्वरूप रस्तोगी M. B B.S.का विवाह आगरा कालिज के प्रिंसिपल (उस समय प्रोफेसर) डा० निहाल करण सेठी M. A D Sc. की सुपुत्री श्री सुभद्रा M. B B. S. के साथ वैदिक रीति से आर्य विवाह विधान के अनुसार हुआ व Special Marrieage Act के अनुसार रजिस्टरी भी कराई गई। डा० सेठी जी जन्म के जैन हैं।

दूसरे वर्ष १६ जुलाई को मेरे दूसरे और सबसे छोटे पुत्र श्री जगदीश स्वरूप रस्तोगी B. Sc. का जो एक वर्ष पहले यौरप Hydro Electric इंजिनियरी की शिक्षा पाकर लौटे थे ग्वालियर आर्य समाज के प्रधान श्री शिवशंकर गौड़ B. A. L. L B की पुत्री विनोदिनी बी० ए० के साथ हुआ, श्री गौड़

जी जाति के कायस्थ हैं। विवाह से पूर्व मेरे पु ने कई कन्याओं के सम्बन्ध में पत्र व्यवहार किया था, और अपना निर्णय करने से पहले मेरी सलाह माँगी थी। मैंने यह सलाह दी थी कि यदि दो कन्याएं और सब गुणों में समान हों, परन्तु एक अपनी विरादरी की हो तो अन्य बिरादरी की कन्या से विवाह करना मैं अधिक पसन्द करूंगा। बहुत से आर्य समाजी ऐसी अवस्था में इसके विरुद्ध इस धारणा का पालन करते हैं कि यदि दो कन्याएं समान गुण की हों तो जो अपनी बिरादरी की हो उसके साथ ही संबन्ध किया जाय। यदि अपनी बिरादरी के भीतर समान गुण स्वभाव की कन्या न मिले तब बिरादरी के बाहर करना चाहिये। मेरे अनुभव में यह बहुधा विरादरी से बाहर विवाह न करने के लिये एक प्रकार का बहाना होता है और मैं इसको आत्मिक दुर्बलता और समाज के लिये हानिकारक समझता हूँ। ज़ाति भेद से देश की इतनी अधिक हानि हुई है और उसका बन्धन ऐसा कड़ा है कि यह आवश्यक है कि उसको तोड़ कर अन्तर्जातीय विवाहों के अधिक से अधिक उदाहरण हो जावें। मेरे पुत्र ने मेरी पूर्वोक्त सलाह के अनुसार श्री गौड़ जी की पुत्री से विवाह करने का निश्चय किया। जो १६जुलाई १६४२ को ग्वालियर में हुआ। संस्कार श्री राजगुरु पं धुरेन्द्र शास्त्री जी ने जो अब सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान हैं, और श्री पं० बुद्धदेव विद्यालंकार ने कराया। गवालियर में ७ या ८ परिवार रस्तोगी जाति के हैं। वे सब विवाह में शरीक हुये। मैं इस बात का

उल्लेख करना इसलिये आवश्यक समझता हूँ कि जन्मगत बिरादरी वालों ने भी इस विवाह में कोई विरोध नहीं किया, बल्कि सहयोग किया। जो लोग अन्तर्जातीय विवाह करने में संकोच करते हैं वे केवल बिरादरी ही के भय से ऐसे संबन्ध नहीं करते। परन्तु वास्तव में जन्म गत बिरादरियों की शक्ति अब इतनी कम रह गई है कि उनसे भय करना केवल आत्म दुर्बलता का सूचक है।

अ० (८७)—D. A. V. College Society Kanpur **दयानन्द ऐ. वैदिक कॉलिज सोसायटी कानपुर के संघटन में सुधार**—मेरा उत्तर प्रदेश की D. A. V. College Society के साथ आरंभ काल से ही सम्बन्ध रहा है। सन् १६४० में जब ला० दीवानचन्द M. A. ने (जो बहुत वर्षों तक बड़ी ख्याति के साथ D A. V. College, कानपुर के प्रिंसिपल रहे थे) उससे सम्बन्ध छोड़ा, मैं उस समय सोसायटी का एक उपप्रधान था। ला० दीवानचन्द के स्थान पर किस योग्यता का प्रिंसिपल नियत किया जाय और उसकी नियुक्ति किस प्रकार हो इस प्रश्न पर पत्रों में कुछ आन्दोलन हुआ। उस समय सोसायटी ने मैनेजिंग कमेटी के बहुत से अधिकार एक ऐसी Working Committee स्थानिक कमेटी को देरक्खे थे जिसके लिये असली नियमावली में कोई स्थान न था। ३१ अगस्त सन् १६४० को मेरठ में सोसायटी के कुछ सदस्यों ने एक अनियमित मीटिंग Informal Meeting बुलाई जिसमें यह निश्चय हुआ कि

सोसायटी का ध्यान पूर्वोक्त नियम विरुद्ध कारवाई की ओर दिलाया जाय और यह अनुरोध किया जाय कि मैनेजिंग कमेटी नियमानुसार बनाई जाकर कालिज का प्रबन्ध और संचालन उचित प्रकार से किया जाय। इस मीटिंग Informal Meet ng का प्रधान मैं चुना गया था। परन्तु इस आन्दोलन में प्रमुख भाग लेने वाले प्रो० धर्मेन्द्रनाथ तर्क शिरोमणि M. A. संस्कृत प्रोफेसर मेरठ कॉलेज और चौधरी जयदेवसिंहजी प्रधान आर्य समाज मेरठ थे। उनका सोसायटी के प्रधान रा० व० डा० ब्रजेन्द्रस्वरूप M. A. L-L. D. के साथ बहुत समय तक पत्र व्यवहार होता रहा, कुछ मुकद्मे बाजी भी होगई। अन्त में यह निश्चय हुआ कि कालेज सोसायटी के नियमों का संशोधन इस प्रकार किया जाय जिससे आर्य समाज मेरठ देहरादून आदि का शिकायतें दूर होकर कालेज तथा अन्य संबंधित संस्थाओं का संचालन उचित रीति से होने लगे। इस कार्य के लिये निम्न लिखित ४ सदस्यों की एक कमेटी बनाई गई।

(१) डा० ब्रजेन्द्र स्वरूप प्रधान सोसायटी (प्रधान)
(२) श्री० दीवान चन्द भूतपूर्व प्रिंसिपल डी. ए. वी. कालिज
(३) राजा ज्वालाप्रसाद प्रो. वा. चैंसेलर हिन्दू यूनिवर्सिटी
(४) मैं (गंगा प्रसाद) उप प्रधान सोसायटी)

इस कमेटी ने बहुत सोच विचार कर यह निश्चय किया कि डी. ए. बी कालिज लाहौर के संगठन के आधार पर युक्त प्रान्त की सोसायटी के नियम बनाये जावें, कमेटी ने इसी के

अनुसार सोसायटी के नियमों में संशोधन परिवर्तत किये, २ जूलाई सन् १६४१ के सोसायटी के विशेष अधिवेशन में वे परिवर्तित नियम व उपनियम स्वीकृत होगये। धीरे २ उन्ही के अनुसार नई मैनेजिग कमेटी व वर्किङ्ग कमेटी वन गई और कार्य चल रहा है।

अ० (८८)—आर्य विद्या सभा काशी का कार्य— दो वर्ष तक (अर्थात सन् १६४१ व १६४२ में) मैंने काशी आर्य विद्यासभा के प्रधान का कार्य किया जो वहां के दयानन्द ऐं० वैदिक कालिज, नित्यानन्द वेद विद्यालय पुस्तकालय, आर्य कन्या पाठशाला और कुछ हरिजन व रात्रि पाठशालाओं का संचालन व प्रबन्ध करती थी, दूरी के कारण प्रबन्ध व निरीक्षण में कठिनाई होने से मैंने सन् १६४२ में त्याग पत्र दे दिया मुझ से पहले स्व० राजा ज्वालाप्रसादजो जो बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के प्रो वाइस चान्सलर थे इस कार्य का सपादन करते थे। स्व० श्री पं० रामनारायण मिश्र वास्तव में इस संस्था के प्राण रूप थे।

अ० (८६)—नारायण स्वामी विद्यालय की स्थापना— जैसा कि अनुच्छेद ६६ में लिखा जा चुका है श्री नारायण स्वामीजी ने सन् १६२० में वृन्दावन गुरुकुल को छोड़ कर रामगढ़ जिला नैनीताल में एकान्तवास किया। वहां उनका आश्रम स्थापित होगया। २० वर्ष तक उनके निवास करने से वहां को जनता में बहुत कुछ जागृति होगई, और उसकी सामाजिक दशा

सुधर गई। हैदराबाद सत्याग्रह के बाद जब स्वामी जी सन् १९३९ में लौटे तो जनता ने उनका स्वागत करते हुए यह इच्छा प्रकट की कि स्वामीजी की स्मृति में रामगढ़ में एक हाई स्कूल स्थापित किया जाय। उसके परिणाम रूप एक कमेटी "नारायण स्वामी विद्या सभा" के नाम से बनाई गई जिसके सभापति का कार्य मुझ को सुपुर्द हुआ। सन् १९४० में उस सभा के प्रयत्न से एक स्कूल खुल गया। श्री माननीय गोविन्द बल्लभ पन्तजी ने जो उस से पूर्व प्रान्तीय सरकार के प्रधान मन्त्री रहे थे और नैनीताल जिले के निवासी थे इस स्कूल को स्वयं खोलना स्वीकार किया था। परन्तु अकस्मात उस समय उनके सुपुत्र के अत्यन्त रुग्ण हो जाने के कारण स्वयं नहीं पधार सके किन्तु अपना शुभ संवाद भेजा जिसको मैंने उनकी ओर से पढ़कर सुना दिया, और उन्हीं के शुभ नाम से १ जुलाई १९४० को स्कूल खोला गया जो तब से बराबर उत्तरोतर उन्नति करता रहा। सन् १९४२ में हाई स्कूल बोर्ड ने हाई स्कूल परीक्षा में शामिल होने की स्वीकृति देदी। विश्व संग्राम के कारण अनेक प्रकार की कठिनाईयां होते हुए भी २ या ३ वर्ष के बीच लगभग बीस हजार रुपये की लागत से स्कूल के लिये एक विशाल भवन तैयार होगया। पीछे एक उत्तम बोर्डिंग हौज भी बन गया।

अ० (९०) — **नारायण आश्रम जयन्ती**— जैसा ऊपर कहा गया है सन् १९२० में रामगढ़ में श्री नारायण

स्वामी आश्रम की स्थापना हुई थी। २५ वर्ष पूरे जाने हो जाने पर सन् १९४५ में तारीख ३ से १० जून तक उसकी जयन्ती बड़े उत्साह पूर्वक मनाई गई। स्वागताध्यक्ष का कार्य मेरे सुपुर्द था। प्रतिदिन यज्ञ होकर पूज्य स्वामीजी का उपदेश होता था, तथा अन्य योग्य विद्वानों के व्याख्यान व सम्मेलन आदि होते थे। पर्वतीय यात्रा की कठिनाइयां होते हुए भी लगभग ५०० मनुष्य बाहर से आये जिनके ठहरने व भोजनादि का प्रबन्ध समुचित्त रीति से किया गया। स्वामीजी की ८० वर्ष की आयु होने के उपलक्ष में इस अवसर पर १० जुलाई के दिवस सार्वदेशिक सभा की ओर से एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया गया जिसमें स्वामीजी की जीवनी के अतिरिक्त विविध विषयों पर कतिपय उत्तमोत्तम लेख हैं। इस कार्य को सभा की ओर से उसका पूर्व प्रधान होने के कारण मैंने ही किया।

खण्ड १०—परोपकारिणी तथा सार्वदेशिक सभा

अ० (९१)—परोपकारिणी सभा के संगठन में सुधार का प्रयत्न—श्रीमती परोपकारिणी सभा का जो ऋषि दयानन्द के स्वीकार पत्र के अनुसार स्थापित है मैं बहुत वर्षों से सभासद हूँ। सन् १९०९ में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना हुई। उससे पहले आर्य नेताओं ने यह विचार किया था कि परोपकारिणी सभा के होते हुए किसी दूसरी

सभा की आवश्यकता है या नहीं। सन् १६०६ में इस प्रश्न पर विचार करने के लिये सब आर्यसमाजों के प्रमुख नेताओं को निमन्त्रित करके अजमेर में परोपकारिणी सभा के वार्षिक अधिवेशन पर एक विशेष समिति बनाई गई थी जिसके संयोजक श्री महात्मा नारायण स्वामी (उस समय श्री नारायण प्रसाद जी) थे। उस समिति ने सर्व समित से यह निश्चय किया था कि यदि परोपकारिणी सभा अपने संगठन में ऐसा परिवर्तन कर लेवे कि उसके दो तिहाई सभासद आर्यसमाजों के चुने हुए हों, और एक तिहाई प्रतिष्ठित सभासद हों तो दूसरी नई सभा बनाने की आवश्यकता नहीं है, और आर्य समाजें परोपकारिणी सभा से अपना संबन्ध कर लेवें। परन्तु परोपकारिणी सभा ने अपने संगठन में इस प्रकार का परिवर्तन करना स्वीकार नहीं किया। इसलिये सन् १६०६ में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा स्थापित होगई।

सन् १६४२ में कुछ सदस्यों की इस शिकायत पर कि आर्य समाज परोपकारिणी सभा का उचित सम्मान नहीं करतीं, मैंने यह प्रस्ताव सभा के सामने रक्खा कि सन् १६०६ की योजना के अनुसार सभा के संगठन में परिवर्तन किया जावे। दो वर्ष तक यह प्रस्ताव सभा के सामने रहा, परन्तु अन्त में बहुमत से अस्वीकार हो गया। मेरा विचार था कि यदि सभा के संगठन में उस प्रकार का कुछ संशोधन होजाता तो श्रीमती परोपकारिणी सभा की उपयोगिता अधिक हो सकती थी।

अ० (६२)—सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना—जैसा कि पैरा ६१ में कहा गया है सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना सन् १६०६ में हुई थी। सन् १६७१ में श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी सभा के प्रधान निर्वाचित हुए, मैं एक उपप्रधान चुना गया। मैंने दो वर्ष तक इस पद पर कार्य किया। सन् १६२२ से १६३६ तक टिहरी रियासत में रहने के कारण मैं सभा की अधिक सेवा नहीं कर सकता था। सन् १६३८ में हैदराबाद सत्याग्रह की महत्वपूर्ण घटना हुई जिसका सविस्तार वर्णन पुस्तक रूप में छप चुका है। आठ मास तक सत्याग्रह रहा जिसमें कई सहस्र मनुष्य गिरफ्तार हुए और कितने ही बलिदान हो गये। ८ अगस्त १६३६ को श्री निजाम हैदराबाद ने आर्यों की मांग को बहुत अंश में स्वीकार कर लिया और सत्याग्रह बन्द कर दिया गया।

अ० (६३)—सभा के प्रधान पद पर कार्य—सन १६४२ में श्री घनश्यामसिंह गुप्त (जो मध्य प्रदेश की विधान सभा के प्रधान Speaker थे) सार्वदेशिक सभा के प्रधान चुने गये। परन्तु उन्होंने अस्वीकार किया। तब १५ अक्टूबर १६४२ की अन्तरंग सभा के निश्चयानुसार मैं प्रधान नियत हुआ। सन १६४३ व १६४४ में भी वार्षिक अधिवेशनों में मैं प्रधान निर्वाचित होता रहा। इस प्रकार मैंने ३॥ वर्ष तक सभा के प्रधान पद का कार्य किया। सन् १६४५ में मेरे स्वास्थ्य की दशा ऐसी हो गई कि मैं उक्त कार्य करने में असमर्थ हो गया। तब श्री महात्मा नारायण

स्वामीजी ने उक्त कार्यभार को लेना स्वीकार किया और तब से जीवन के अन्त समय तक इस उत्तरदायित्वपूर्ण काम को सम्हाले रहे। सन् १६४७ के अक्टूबर मास में १५ ता० को बरेली में श्री स्वामीजी का स्वर्गवास हो गया।

अ० (६३ क)– आर्य प्रतिनिधि सभा यु० प्रा० व श्री मथुरा प्रसाद शिवहरे के दीवानी मुकदमे में सरपंच का कार्य- आर्य प्रतिनिधि सभा युक्तप्रान्त व श्री मथुरा प्रसाद शिवहरे डाईरेक्टर आर्य साहित्य मंडल के बीच हिसाब का झगड़ा होने से सभा कि ओर से शिवहरे जी के विरुद्ध दीवानी अदालत में दावा दायर हुआ। अदालत में दोनों पक्ष ने पंचायत से फैसला कराने की दरखास्त को। तीन पंच नियत हुए। मैं सरपंच नियत हुआ। मुकदमा बहुत पेचीदा था और मुझको उसके सुनने में बहुत परिश्रम करना पड़ा। मेरा स्वास्थ्य भी उस समय गिरा हुआ था। इस मुकदने का कई पेशियां मैंने नवम्बर सन् १६४६ में मेरठ में रक्खी। पीछे कई पेशियां लखनऊ व आगरे में रक्खी गई। अन्त को १ जनवरी १६५२ से २० जनवरी तक मैंने इसी मुकदमे के लिये गुरुकुल वृन्दावन में निवास किया। वहीं गवाह व सबूत पेश होते रहे। सभा की ओर से श्री पंडित रामदत्त शुक्ल M. A. L. L. B ऐडवोकेट व श्री परमेश्वरी सहाय वकील आगरा पैरवी करते थे, शिवहरे जी की ओर से उनके पुत्र श्री धर्मेन्द्रनाथ शिवहरे M. A. L. L. B व श्री दत्तात्रेय बाबले M. A. L. L. B (जो इस समय डी०

ए० वी० कालिज अजमेर के प्रिंसिपल हैं) पैरवी करते थे, अन्त को २६ जनवरी १६४२ को हिसाब का झगड़ा कुछ साफ होजाने पर दोनोंपक्ष ने यह मान लिया कि मुहाजा ३५००) विलमुक्ता सभा को देवे। मैंने सरपंच के तौर पर इसी प्रकार अदालत को सूचना देदी, दोनों पक्ष के सबूत के कागज उनको वापिस दिये गये, फिर भी ४ रजिस्टर दोनों के पक्ष के आग्रह पर मुझको अपने पास रखने पड़े। जो कई वर्ष तक रहे। उसके बाद दोनों की अनुमति होकर मैंने उनको तलफ (नष्ट Weed) किया।

अ० (६४)—सत्यार्थ प्रकाश आन्दोलन—सन् १६४२ में सिन्ध गवर्नमेंट के मुस्लिम लीगी मन्त्री ने एक वक्तव्य प्रकाशित किया कि सिन्ध सरकार सत्यार्थ प्रकाश के १४ वें समुल्लास के प्रकाशन को बन्द करने पर विचार कर रही है। दिसम्बर १६४३ में मुस्लिम लीग ने अपने वार्षिक अधिवेशन में एक रेजोल्यूशन स्वीकार करके भारत सरकार को इस उद्देश्य से भेजा कि सत्यार्थ प्रकाश का चौदहवां समुल्लास जब्त किया जावे। इससे आर्य समाजों में घोर आन्दोलन आरम्भ हो गया।

अ० (६५)—देहली में सत्यार्थ प्रकाश सम्मेलन—सार्वदेशिक सभा ने निश्चय किया कि इस विषय पर मार्ग प्रदर्शन के लिए देहली में एक बड़ा सम्मेलन किया जाय। तदनुसार २० से २२ फरवरी सन् १६४४ तक देहली आर्य कांग्रेस के नाम से एक विशाल सभा की गई जिसमें अपूर्व सफलता हुई। उसके प्रबन्ध का श्रेय मुख्यतया स्व० श्री लाला नारायणदत्त जी को

था जो स्वागत समिति के अध्यक्ष थे। सम्मेलन की तारीख से दो दिन पहले अर्थात् १८ फरवरी को देहली में घोर वर्षा हुई और ओले पड़े जिससे सम्मेलन के पंडाल व कैंप को बहुत हानि पहुँची। सारे कैंप व आसपास की भूमि में पानी भर गया। परन्तु सरदार मलखानसिंहजी ने जिनके सुपुर्द कैम्प की तैयारी का काम था बड़े धैर्य और साहस से काम लिया और २० तारीख से पहले कैम्प व पंडाल को ठीक तौर पर तैयार कर दिया।

सम्मेलन के प्रधान पद के लिए स्व० श्री डा० श्यामाप्रसाद मुखरजी जो हिन्दू महासभा के प्रधान थे निमन्त्रित किये गये थे। १६ फरवरी १६४४ को उनका जलूस नगर में होकर निकला जिसके साथ लगभन ५० हजार मनुष्यों का समुदाय था। ५ बजे जलूस समाप्त होकर पंडाल में पहुँचा तब ध्वजारोहण होकर प्रधान महोदय का भाषण हुआ।

२० फरवरी १६४४ को प्रोग्राम के अनुसार पंडाल में संमेलन हुआ। पण्डाल सभासदों व दर्शकों से खचाखच भरा हुआ था। लगभग बीस हजार पुरुष व स्त्रियां उपस्थित थे। सत्यार्थ प्रकाश विषयक प्रस्ताव Reslosution जो मुख्य प्रस्ताव था मैंने अपने भाषण के साथ सम्मेलन में उपस्थित किया जिसका अनुमोदन श्री प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति ने जो सभा के मन्त्री थे किया। प्रस्ताव के समर्थकों में बहुत से गण्यमान्य नेता थे जिनमें श्री गोस्वामी पं० गणेशदत्तजी का नाम जो सनातन धर्म महा मण्डल के मन्त्री थे विशेष रूप से वर्णन करने के योग्य है। २१ व २२

फरवरी को सम्मेलन के अन्य प्रस्ताव पेश होकर स्वीकृत हुए। श्री म० नारायण स्वामीजी ने यह प्रस्ताव रक्खा कि सत्यार्थ प्रकाश की रक्षा के लिए दो लाख रुपया इकट्ठा किया जाय। यद्यपि इस प्रस्ताव को रखने के लिए पहले से कोई विचार न था, और इसलिये न किसी प्रकार की तैयारी की गई थी तो भी ८०००) उसी समय नकद इकट्ठा और ४५ हजार की प्रतिज्ञाएं लिखी गईं।

अ० (९६)—सिन्ध में सत्यार्थ प्रकाश के विरुद्ध प्रतिबन्ध—सिन्ध सरकार ने सत्यार्थ प्रकाश के १४वें समुल्लास के विरुद्ध जो आज्ञा जारी की थी, उसके दूर कराने के लिये सभा ने लगभग २० आर्य नेताओं की एक समिति बनादी थी जिसके अध्यक्ष माननीय श्री घनश्यामसिंह गुप्त (प्रधान विधान सभा मध्य प्रदेश) नियत हुए थे। परन्तु विश्वव्यापी युद्ध और देश में असाधारण राजनैतिक आन्दोलन के कारण और विशेषतया सिन्ध में मुस्लिम नेताओं के ही बीच राजनैतिक दलबन्दियां होने के कारण इस समिति ने बहुत समय तक अपना कार्य स्थगित रक्खा। अन्त में सन् १९४७ में श्री म० नारायण स्वामी जी सर्वाधिकारी नियत हुए और उन्होंने करांची में जाकर कार्य आरम्भ किया। श्री स्वामीजी सत्याग्रह आरम्भ करने की घोषणा कर चुके थे, परन्तु इसी बीच सिन्ध के अधिकारियों ने स्वयं अपनी आज्ञा को वापिस न लेते हुए भी बेकार कर रद्द कर दिया और अपनी पुलिस व अधिकारियों को यह आज्ञा दे दी कि

सत्यार्थ प्रकाश के विरुद्ध कोई कार्रवाई न करें । इसलिये सत्याग्रह जारी करने के लिये (जिसके वास्ते पूज्य नारायण स्वामी जी ने समुचित तय्यरी करली थी) कोई आवश्यकता न रही, और आर्य समाज की विजय हुई।

११ खण्ड—श्री अरविन्द का आश्रम।

अ० (६७)—**श्री अरविन्द आश्रम पांडीचेरी का कुछ परिचय**—जैसा अनु० ८४ में कहा गया है मैं व भाई० प्यारेलाल जी ६ दिन अर्थात १७ नवम्बर सन् १८४२ से २२ नवम्बर सन १८४२ तक श्री अरविन्द आश्रम पांडीचेरी में रहे थे। २२ ता० को श्री माता जी का जन्म दिवस था। वह वर्ष भर के उन ४ दिवस में था जिनमें श्री अरविन्द के दर्शन हो सकते थे। इस अवसर पर हमारे जाने का मुख्य उद्देश्य उनके दर्शन करना ही था।

दर्शन का विवरण देने से पहले श्री अरविन्द का और उनकी शिक्षा तथा योग साधना का कुछ संक्षिप्त वर्णन देना आवश्यक है। श्री अरविन्द घोष ने सन् १६१० में पांडीचेरी आकर योग साधना आरंभ की थी श्री माताजी सन् १६१४ में अपने पति पालरिचरड सहित आकर उनके साथ रहने लगी। माताजी का पूरा नाम Miriam है, मीरा कहते हैं, पर वास्तव में सब कोई साधक या दर्शक "माता" कहकर ही बोलते हैं। उनके आने के बाद श्री अरविन्द ने 'आर्य'' Arya नामक एक मासिक पत्र का संपादन व प्रकाशन आरंभ किया जिसमें आध्यात्मिक विषयों पर

अंग्रेजी में वे स्वयं लेख लिखते थे और फ्रेंच भाषा में श्री पालरिचर्ड लिखते थे। यह मासिक पत्र सन् १९१४ या १९१५ में बन्द होगया और श्री पाल रिचर्ड पांडीचेरी से चले गये। माताजी भी कुछ समय के लिये चली गई। सन् १९२० में फिर आकर स्थायी रूप से वहां रहने लगी। "माताजी"को फ्रांस में वाल्यकाल ही से योग साधना में रूचि थी। उनका कहना है कि उनको वहां एक बार ध्यान में श्री अरविन्द के दर्शन हुए थे और उनको यह बतलाया गया कि इनके ही साथ उनको अपनी योग साधना करना होगी। वे उस समय श्री अरविन्द को नहीं जानती थी, पांडीचेरी आकर उनसे भेट होने पर निश्चय हुआ कि इन्हीं के दर्शन उनको ध्यान में हुए थे।

श्री माता जी व श्री अरविन्द पांडीचेरी में अपनी साधना करते रहे। कुछ और भी साधक साथ रहते थे। सन् १९२६ में २४ नवम्बर को उन दोनों को सिद्धि प्राप्त हुई और तब वे पूर्ण योगी होगये। तभी से वे अन्य साधकों को दीक्षा देने लगे और आश्रम की स्थापना समझी जाती हैं। उसी समय से श्री अरविन्द आश्रम की ऊपर की मंजिल पर एकांत वास करने लगे। और नीचे नहीं आते थे न आश्रम से बाहर जाते थे। केवल कुछ गिने चुने साधक या सेवक ऊपर जाते या वहां रहते थे। अन्य साधकों वा दर्शकों को केवल नीचे लिखे चार दिवस पर श्री अरविन्द के दर्शन होते थे।

(१) १५ अगस्त को जो उनका जन्म दिवस है,

(२) २४ नवम्बर को जब उनको सिद्धि प्राप्त हुई,
(३) २१ फरवरी को जो माताजी का जन्म दिवस है,
(४) २२ अप्रेल को जब माताजी ने स्थायी रूप से वहां आकर रहना आरम्भ किया।

मैं व भाई प्यारेलाल जी २१ फरवरी में दर्शन के लिए पांडीचेरी गये थे। उस समय आश्रम में लगभग २०० साधक रहते थे दूसरे वर्ष सन् १९४३ में जब हम दोनों दो बारा गये तो साधकों की संख्या लगभग ४०० थी। अब लगभग ८०० कही जाती है। इन सब के भोजन वस्त्र आदि का पूरा प्रबन्ध जो आश्रम ही में होता है श्री माताजी के हाथ में है।

अ०(९८)—२१ फरवरी १९४६ के दर्शन का वर्णन— दर्शन की विधि इस प्रकार थी। ता० २० फरवरी को अर्थात वास्तविक दर्शन से एक दिवस पूर्व सन्ध्या समय सब साधक व दर्शक (जिनकी संख्या २०० व ३०० के बीच होगी) माताजी को प्रणाम करने के लिये आश्रम में उपस्थित हुए। माता जी एक चौकी पर बैठ गई। भारतीय वेष में थी। सब मनुष्य एक पंक्ति बांध कर एक एक करके उनके सन्मुख गये, और हाथ जोड़ कर उनको प्रणाम किया, माताजी ने उनके शिर पर अपना हाथ रक्खा इस कार्रवाई में लगभग २ घण्टा लगे होंगे।

२१ फरवरी को श्री अरविन्द के दर्शन का समय ५ बजे नियत था। ठीक समय पर वे ऊपर की मंजिल में एक कमरे में कुरसी पर साथ में श्री माताजी दूसरी कुर्सी पर बैठी। श्री अरविन्द कुर्ता

व धोती पहने थे माताजी २० फरवरी की तरह साड़ी पहने हुए थी। साधक व दर्शक पंक्ति बांधकर सब उनके सामने होकर गुजरे। बीच में कुछ फासला था। सब साधक वा दर्शक फूल वा माला लेकर गये थे। प्रत्येक उसको एक सन्दूक में जो पास रक्खा था डाल देता था। कुछ लोग फूलों के सिवाय कुछ अन्य वस्तु रुपया या नोट आदि भी लाये थे। उन वस्तुओं के लिये एक दूसरा सन्दूक पास ही रक्खा था। मैंने एक अपनी लिखी Fountainbead of Religion पुस्तक की एक प्रति भेट की थी। दर्शन करते समय प्रत्येक मनुष्य श्री अरविन्द व माता जी के दर्शन करता था जिसके लिये अधिक समय नहीं दिया जाता था और श्री अरविन्द व माताजो उसकी ओर देखते थे। मैं भी इसी तरह कुछ समय तक खड़ा होकर उनको देखता रहा, वे भी देखते रहे। श्री अरविन्द की आंखों मैं तेज और मुख पर गंभीरता और ज्योति थी। उनका चेहरा उस फोटो से बहुत कम मिलता था जो आश्रम में बिकते थे वा जिनका चित्र उनकी छपी पुस्तकों में है।

दर्शन के बाद मैंने एकान्त में बैठकर कुछ देर श्री अरविन्द का ध्यान किया। उनका मुख देर तक मेरी आंखों के सामने बना रहा और मुझ को मानसिक प्रसन्नता रही।

अ० (६६)—श्री अरविन्द की आध्यात्मिक शिक्षा व योग साधन—श्री अरविन्द ने बहुत पुस्तके लिखी हैं

जिनमें Life Divine (3 vols) और Essays on Gita बहुत प्रसिद्ध हैं। कुछ पुस्तकों के हिन्दी में भी अनुवाद हो चुके हैं। उनका मत अद्वैत ही है, द्वैत नहीं। पर श्री शंकराचार्य के अद्वैत सिद्धान्त से बिल्कुल भिन्न, प्रत्युत उनके मायावाद से तो विरुद्ध ही है। श्री रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत से कुछ मिलता हुआ है पर है उससे भी भिन्न हीं। श्री अरविन्द अद्वैतवाद में एक विशेष बात ऐसी है जिससे वह आर्य समाज या वैदिक धर्म के एकेश्वर वाद से कुछ अनुकूल हो जाता है वह यह है कि श्री अरविन्द मुक्त जीव का पृथक और स्थायी अस्तित्व मोक्ष अवस्था में भी मानते हैं उसका ब्रह्म में लीन हो जाना नहीं मानते। यह बात उन के गीता के व्याख्यानों में तथा अन्यत्र भी बहुत स्पष्टता से कही गई हैं।

श्री अरविन्द की योग साधना भी पातंजल योग साधना से भिन्न ही है। उसमें ईश्वर को आत्म समर्पण करने का बहुत महत्व माना गया है। और आश्रम में रहकर साधकों को जो काम दिये जाते है उनको भी इसी भावना से करना बतलाया जाता हैं कि वे जो कुछ करते हैं वह ईश्वर के ही अर्पण है। पांतजल योग दर्शन में भी "ईश्वर प्राणिधान" का विशेष महत्व है। वह ५ नियमों में भी गिनाया गया है और योग सूत्र २।४५ में उक्त अकेले से ही समाधि सिद्धी मानी गई है—"समाधि सिद्धिरीश्वर प्रणिधानात्"।

अ० (१००)—पांडीचेरी की यात्रा सन् १९४३ व

१९४४ में—रामे स्वास्थय ऐसा है कि सर्दी की ऋतु में ठंडी जगह अनुकूल नहीं होती। पांडीचेरी में ठंड बिलकुल नहीं। सर्दी की ऋतु में भी ऐसा मौसम रहता है जैसा यहां फागुन व चैत मास में होता है। इस कारण से और श्री अरविन्द आश्रम के आकर्षण से मैंने सन् १९४३ व १९४४ में भी पांडीचेरी की यात्रा की।

२२ नवम्बर सन् १९४३ को मैं तथा श्री प्यारेलालजी देहली से दूसरी वार पांडीचेरी को गये और फरवरी १९४३ में वापिस आये इस प्रकार श्री अरविन्द के २४-११-४२ तथा २१-२-४३ के दोनों दर्शनों के लाभ का अवसर मिल गया।

२१ नवम्बर सन् १९४३ को तीसरी बार हम दोनों ने पांडीचेरी की यात्रा की। २४-११-४३ की श्री अरविन्द का दर्शन किया परन्तु २१-२-४४ के दर्शन के लिये मेरा वहां ठहरना संभव न था। क्योंकि २० फरवरी को देहली में सत्यार्थ प्रकाश सम्मेलन होना था। मैं उस समय सार्वदेशिक सभा का प्रधान था। इसलिये उसके पूर्व देहली पहुँचना आवश्यक था। ७ फरवरी १९४४ को मैं पांडीचेरी से कानपुर को रवाना हुआ जहां डी० ए० वी० कालिज सम्बन्धी कुछ कार्य था। १६ फरवरी १९४४ को देहली पहुँच गया। भाई प्यारेलाल जी पांडीचेरी ही रहे और २१-५-४४ को श्री अरविन्द के दर्शन के वाद घर को वापिस आये।

इसके पश्चात् मुझ को वा भाई प्यारेलालजी को फिर पांडीचेरी जाने का अवसर नहीं मिला। सन १९४६ जूलाई मास

में भाई प्यारेलाल जी का (जिनका कई वर्ष से स्वास्थय अच्छा नहीं था) देहावसान होगया।

इस प्रसंग में यह लिखना असंगत न होगा कि ५ दिसम्बर सन् १६५० को १।। बजे दोपहर के समय श्री अरविन्दजी ने निर्वाण प्राप्त किया। परन्तु उनका आश्रम श्री माताजी की अध्यक्षता में सुव्यवस्था पूर्वक चल रहा है। और "अदिति" नामक त्रैमासिक पत्र में उसका विस्तृत विवरण प्रकाशित होता रहता है।

अ० (१०१)—बंगलौर में दक्षिण भारत आर्य कांग्रेस के प्रधान पद का कार्य—जिस समय मैं पांडीचेरी ठहरा हुआ था बंगलौर में दिसम्बर सन् १६४२ ई० में दक्षिण भारत आर्य संमेलन का तीसरा अधिवेशन हुआ। उसका पहला अधिवेशन दिसम्बर सन् १६४० ई० में महात्मा नारायण स्वामी के सभापतित्व में मदुरा में हुआ था। दूसरा अधिवेशन दिसम्बर सन् १६४१ ई० में श्री म० सत्यमूर्ति L. M. A. Central की अध्यक्षता में हुआ था। यह तीसरा अधिवेशन बंगलौर में होने वाला था जिस के लिये मैं सभापति चुना गया। मैं २ दिसम्बर सन् १६४२ को बंगलौर पहुँच गया, सम्मेलन का उद्घाटन २८ दिसम्बर को श्री राजमन्त्र प्रवीण के० बी० अनन्त K V. Anant Raman. जी ने किया जो मैसूर राज्य सभा Council के first member प्रथम सदस्य थे। स्वागताध्यक्ष श्री देवराव शिवराव थे और स्वागत मन्त्री श्री हरनामदास कपूर थे! सम्मेलन के प्रबन्ध का श्रेय अधिकतर श्री हरनामदास कपूर

जी को ही था । वास्तव में वे आर्य समाज बंगलौर के और इस सम्मेलन के भी प्राण थे। सम्मेलन में कई उपयोगी प्रस्ताव (रेजोल्यशन) स्वीकृत हुए, एक मैसूर राज्य के अन्तर्जातीय विवाह विधान विषयक था। मेरा भाषण अधिकारियों की इच्छा के अनुसार अंग्रेजी में 'वेद तथा ऋषि दयानन्दकृत वेद भाष्य' विषय पर हुआ था जिसका अच्छा प्रभाव होना कहा गया। सम्मेलन के अधिकारियों ने इसको पीछे से पुस्तक रूप में छपवा कर सम्मेलन की रिपोर्ट के साथ प्रकाशित व वितरित किया था।

अ० (१०१)—**पांडोचेरी से मदरास में प्रचार का कार्य**—सन् १६४२ ई० में व १६४३ में मैंने कई मास तक पांडीचेरी में निवास किया था जैसा कि अनुच्छेद सन् ६७-१०० में वर्णन किया गया है। इस बीच में समय समय पर मदरास आर्य समाज के निमंत्रण पर मैं वहाँ जाकर प्रचार का कार्य करता था। सन् १६४३ के दिसम्बर मास में श्री श्रद्धानन्द बलिदान दिवस के उपलक्ष में मदरास आर्य समाज ने ३ दिवस तक प्रचार की योजना की। मैं २३ दिसम्बर के प्रात.काल ही मदरास पहुँच गया। २४ ता० के सांयकाल मदरास नगर से कुछ दूरी पर रायपुरम में स्थानिक समाज के प्रधान श्री कुमार स्वामी अध्यक्षता की में व्याख्यानों का प्रबन्ध किया गया था। पहले पं० कन्हैयाजो का जो मदरास के एक योग्य प्रचारक थे तामिल भाषा में व्याख्यान हुआ। फिर मैंने अंगरेजी में भाषण दिया। २५ दिसम्बर की सांयकाल Sir Mutthia Chettiar नामक

प्रसिद्ध हाई स्कूल में मेरा व्याख्यान वैदिक समाजवाद तथा वर्तमान समाजवाद विषय पर हुआ। इसी स्थान पर 'हिन्दू धर्म सेवा संघ' की ओर से एक छपा हुआ Welcome Address स्वागत ऐड्रेस मुझ को दिया गया। तीसरे दिन २६ दिसम्बर को प्रातःकाल सेन्ट्रेल आर्य समाज मन्दिर में हवन के पश्चात् "दक्षिण के लिये आर्य समाज का सन्देश" विषय पर मेरा भाषण हुआ। सांयकाल ५॥ बजे से श्रद्धानन्द दिवस की कार्यवाही आरम्भ हुई, मैंने सभापति का आसन ग्रहण किया। नगर के सात अन्य प्रतिष्ठित सज्जनों के भाषण हुए। उपस्थिति अच्छी थी। २५ दिसम्बर को मुसलिम लीग ने सत्यार्थ प्रकाश के विरुद्ध एक रेजोल्यूशन पास करके प्रकाशित किया था। उसके विरोध में भी जनता की ओर से एक रेजोल्यूशन स्वीकृत हुआ। उसी रात की ट्रेन से मैं मदरास से पांडीचेरी चला गया।

---

१२ खण्ड—जातिभेद निवारक आर्य्य परिवार संघ

अ० (१०२)—जातिभेद निवारक आर्य परिवार संघ की स्थापना—फरवरी १९४४ में देहली में जो आर्य्य सम्मेलन हुआ था उसमें सत्यार्थप्रकाश की रक्षा के सिवाय और भी कई उपयोगी विषयों पर निश्चय हुए थे। उन में एक प्रस्ताव इस विषय का था कि जन्मगत जातिभेद से देश की बहुत हानि हुई है और उसको दूर करने में आर्य समाज को अभी तक बहुत

कम सफलता हुई है, इसलिये उसको समूल विच्छेद करने के लिये संगठित रूप से कार्य करने की एक योजना बनाई जावे। इस के वास्ते सार्वदेशिक सभा की आज्ञा से एक समिति बनाई गई जिसका संयोजक मैं था और स्व० राजा ज्वालाप्रसाद (जिनका परिचय अनुच्छेद ३१ व ४७ में दिया जा चुका है) एक प्रमुख सदस्य थे। फरवरी सन् १९४४ के दूसरे सप्ताह में जब मैं पांडीचेरी से सम्मेलन के कार्य के लिये देहली जा रहा था तो मार्ग में कानपुर इसलिये ठहरा कि वहां दयानन्द ऐंग्लो वैदिककालिज के संगठन सुधार सम्बन्धी एक समिति में भाग लेना था जिसके स्व० राजा ज्वालाप्रसाद और मैं दोनों सदस्य थे। श्रीमान् राजा ज्वालाप्रसाद उस समय बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के प्रो० वाइस चांसलर थे परन्तु शीघ्र ही उस काम को छोड़ने वाले थे। मेरा उनसे वार्तालाप हुआ तो उन्होंनें अपना यह निश्चय प्रकट किया कि भविष्य में वे केवल जन्मगत जाति भेद को तोड़ने के प्रयत्न में अपना सारा समय लगाना चाहते हैं। उन्हीं की प्रेरणा से और उनके बहुमूल्य सहयोग के भरोसे पर मैंने ऊपर लिखा प्रस्ताव २१ फरवरी सन् १९४४ ई० को आर्य सम्मेलन में रक्खा था। यह देश का दुर्भाग्य था कि उसके ६ मास पीछे ही अर्थात् १६ सितम्बर सन् १९४४ ई० को राजा साहब का अचानक हृदय की गति रुक जाने से देहवसान हो गया। उनकी अकाल मृत्यु से इस सुधार कार्य की जो महान् हानि हुई वह अवर्णनीय है। पूर्वोक्त समिति ने अपनी योजना बनाकर सार्वदेशिक अन्तरंग सभा में पेश करदी और अन्तरंग सभा की स्वीकृति से जातिभेद

निवारक आर्य परिवार संघ बन गया जिसका मैं अध्यक्ष चुना गया श्री पं० धर्मदेव वि० वा० उपाध्यक्ष, और पं० भद्रसेन आचार्य्य अजमेर निवासी संचालक नियत हुए। दफ्तर अजमेर में ही रहा। २५ दिसम्बर सन् १९४५ ई० को संघ की पहली बैठक अजमेर में हुई। तभी से संघ अपनी सामर्थ्य के अनुसार कार्य कर रहा है। इस समय उसके लगभग ३०० सदस्य और ५० सहायक हैं। एक त्रैमासिक पत्रिका "अन्तर्जातीय विवाह पत्रिका" नाम की प्रकाशित होती है, जिसमें अन्य उपयोगी बातों के सिवाय ऐसे कुमार व कुमारियों तथा विधवा व विधुरों की सूची (आवश्यक विवरण सहित) छपती है कि जो अन्तर्जातीय विवाह करना चाहते हैं। धन की कमी से कोई प्रचारक अभी तक नहीं रक्खा जा सका जिसकी बड़ी आवश्यकता है। ४ अप्रैल सन् १९४९ को भारत पार्लीमेंट में श्री ठाकुरदास भार्गव महोदय का पेश किया हुआ यह कानून स्वीकृत किया गया कि हिन्दुओं की सब जातियों व उपजातियों में सिक्ख व जैनी समेत अन्तर्जातीय विवाह हो सकते हैं। इससे पहले आर्य्य विवाह विधान के अनुसार केवल आर्य्य समाजी ऐसा कर सकते थे। अब सारी हिन्दू जाति के लिए मार्ग इस प्रकार खुल कर जाति भेद निवारक संघ का कार्य क्षेत्र बहुत बढ़ गया। आशा है जनता उससे लाभ उठावेगी।

संघ के गत अधिवेशन पर जो अप्रैल १९४९ में देहली स्थान पर हुआ था मैं अस्वस्थ्य होने के कारण उपस्थित

न हो सका। मैंने यह प्रस्ताव भेजा था कि मैं प्रधान का कार्य करने में असमर्थ हूँ इसलिए श्री पं० धर्मदेव वि० वा० प्रधान निर्वाचित किये जायँ। मैं सदस्य रहते हुए भी पूर्ववत् यथाशक्ति सहयोग दूँगा। यदि अधिकारियों में मेरा नाम आवश्यक समझा जाय तो मैं एक उपप्रधान चुनलिया जाऊँ। संघ ने मेरे प्रस्ताव के अनुसार श्री पं० धर्मदेवजी को प्रधान तो चुना परन्तु मुझको उपप्रधान न चुनकर संरक्षक नियत किया। यह संघ के सदस्यों का मेरी ओर सद्भाव ही है, संघ का कार्य मैं यथा सामर्थ्य पूर्ववत् करता ही हूँ और यावज्जीवन करता रहूँगा।

कुछ मास हुए श्री पं० भद्रदत्तजी ने कई कारणों से संघ के संचालक पद से त्यागपत्र दे दिया था। उनके स्थान में श्री विजयबिहारीलाल माथुर M. A. M. Ed. संघ के संचालक तथा पत्र के सम्पादक कार्यकारिणी समिति की आज्ञा से नियत हुए। वे जयपुर में ही निवास करते हैं इसलिए संघ का कार्यालय अजमेर से जयपुर तबदील होकर जयपुर में ही रहने लगा। संघ के कोषाध्यक्ष श्री रामप्रताप आर्य भी कुछ समय से जयपुर में ही अधिक निवास करते हैं। आशा है इन कारणों से संघ के कार्य में सुविधा होकर कुछ सुधार भी हो सकेगा।

अ० (१०३)—सन् १९४४-४५ की शरद् ऋतु में देहली व सोहना निवास—सन् १९४४ की शरद् ऋतु में मैं इसलिए पांडीचेरी नहीं जासका कि मैं सार्वदेशिक सभा का प्रधान था। सत्यार्थप्रकाश के विरुद्ध जैसा ऊपर कहा गया है, सिंध

की मुसलमान सरकार व मुस्लिमलीग का आन्दोलन जारी था, इसलिए मैंने देहली में ही वा उसके समीप कुछ समय के लिए अपना निवास रखना उचित समझा। सार्वदेशिक सभा का कार्यालय श्रद्धानन्द बलिदान भवन में है। उसकी छत पर दो कमरे अतिथियों के निवास के लिए बने हुए हैं। एक कमरे में कुछ पहले से पं० धर्मदेवजी सपरिवार रहते थे। दूसरे कमरे में मैंने अपना निवास किया। सर्दी से बचने के लिए मैं कुछ समय के लिए सोहना जाकर रहता था, जो गुडगांव जिले के भीतर (देहली से लगभग ३० मील दूरी पर) एक रम्य स्थान है जहां पहाडी के भीतर से गंधक मिश्रित गर्मजल निकलता है और उस जल के ४ या ५ स्नान कुंड बने हुए हैं, जिनमें लोग स्नान कर सकते हैं जिससे सर्दी के बचाव के सिवाय अन्य प्रकार स्वास्थ्य को लाभ होता है! जनवरी व फरवरी १९४५ में भी मैं अधिकतया सोहना में ही रहा। उस मन्दिर के अहाते में जिसमें पूर्वोक्त ताल हैं प्रबन्ध कमेटी ने आर्य समाज के लिए भी एक कमरा तथा हवन के लिए छत पर स्थान दे रक्खा है जिससे वहां का आर्य समाज अपने साप्ताहिक सतसंग और हवन आदि सुविधा पूर्वक करता है। उस समय इस मन्दिर व गर्म जल के तालाबों के बाबत सोहना के मुसलमानों की तर्फ से दीवानी अदालत में मुकदमा चल रहा था जिसमें सोहना आर्यसमाज ने मन्दिर प्रबन्धक कमेटी को अच्छी सहायता दी।

अहाते के अन्दर के ४ कुण्डों में से एक चमार व अन्य नीच जाति वालों के लिये है। अहाते के बाहर एक भंगियों के वास्ते है। चमारों मेहतरों दोनों ने यह शिकायत की कि उनके कुण्डों में पानी कम आता है। मैंने ताल की प्रबन्ध कमेटी के कुछ मेम्बरों का ध्यान दिलाया। इन दोनों कुण्डों में कुछ मरम्मत की भी आवश्यकता थी। मैंने कुछ आर्थिक सहायता देकर मरम्मत का प्रबन्ध भी कर दिया।

(१०४)–भाई प्यारेलालजी की २ पुत्रियों के विवाह:– भाई प्यारेलाल जी की ७ कन्याएँ थी, ५ के विवाह यथा समय हो चुके थे। दो का विवाह बाकी था अर्थात् (१) कुमारी मनोरमा बी० ए० बी० टी B. A., B. T. जो जयपुर में महाराणी गार्गी कन्या विद्यालय में अध्यापिका थीं और (२) कुमारी सरला रानी एम. ए. जो ग्वालियर में राज्य के महिला विद्यालय Womens College में प्रोफेसर थीं। विवाह बिरादरी के बाहर ही होने थे। ऐसे विवाहों में कठिनाई व विलम्ब होना आश्चर्य की बात नहीं, भाई प्यारेलालजी को इसकी चिन्ता रहती थी। वे और उनके आदेश से मैं भी योग्य वरों की तलाश करते रहते थे। ईश्वर की कृपा से उनके जीवन समय में दोनों विवाह सुयोग्य वरों के साथ होगये। कुमारी मनोरमा का विवाह नवम्बर १९४५ में जयपुर में श्री डा० विश्वनाथ कंसल M. B. B. S. के साथ जो जयपुर के मेडिकल विभाग में आँखों के बड़े सर्जन थे और अग्रवाल जन्म जाति के हैं हुआ। कुमारी

सरला रानी M. A. का विवाह देहली मे जनवरी १६४६ में श्री जगदीश सिह माथुर M. A. के साथ जो जाति के कायस्थ हैं और भारत गवर्नमेंट में Director of Industries and Supplies थे होगया।

अ० (१०५)—भाई प्यारेलालजी का स्वर्गवास—

भाई प्यारेलालजी का स्वास्थ्य बहुत समय से अच्छा न था। पर वे बड़े संयम से रहते थे और उसकी सम्हाल करते थे। हाजमे की शिकायत Dyspepsia व बात रोग Neurestha-nia के सिवाय उनको हृदय का भी रोग था जो भयंकर होता है। वे अपने अन्त समय में बहुधा देहली अपने पुत्र श्री कीर्ति स्वरूप के मकान पर रहे। उनकी स्त्री श्रीमती यशोदेवी व छोटा पुत्र आनन्द स्वरूप जो उस समय लगभग १५ वर्ष का था उनके साथ रहते थे। १० जौलाई १६४६ को दोपहर के १ बजे हृदय की गति रुक जाने से उनका अचानक प्राणान्त होगया। उस दिन और उससे पूर्व उनकी साधारण अवस्था अच्छी थी। उस दिन विशेषकर उन्होंने अच्छी तरह स्नान किया संध्या की। लगभग १२ बजे दोपहर बड़ी रुचि से भोजन किया और लेट कर आनन्द से कुछ बातें करते थे। उसके बाद श्रीमती यशोदेवी स्वयं भोजन करने के लिये रसोई घर में चली गईं केवल आनन्द स्वरूप उनके कमरे में था। लगभग १ बजे उनको कुछ हुचकी सी हुई आनन्द स्वरूप ने अपनी बाल बुद्धि के अनुसार समझा

शायद उन्होंने प्राणायाम किया, और उन्होंने प्राण छोड़ दिये। यशोदादेवीजी और उनकी पुत्री सरलारानी जो उस दिन वहीं थीं कमरे में आईं, उसी समय डा० भार्गव की D. P. Bhargava. M. R. C. P. को जो उनके प्राचीन चिकित्सक थे टेलीफोन से सूचना दी गई । वे १५ मिनट के भीतर आगये पर देखा कि श्री प्यारेलालजी के प्राण पखेरू उड़ चुके थे।

श्री कीर्ति स्वरूप देहली में नहीं थे, शिमला गये हुए थे । सूचना पाने पर उन्होंने तार द्वारा यह आदेश दिया कि उनके आने तक अन्त्येष्टि संस्कार न किया जाय । इस लिये शव को वर्फ में रखदिया गया और फूलों के ढेर से ढक दिया गया । अन्त समय उनकी सौम्य मूर्ति बहुत शान्त थी जैसे सोने की दशा अथवा ध्यान में होती है ।

११ जूलाई को श्री कीर्तिस्वरूप के आने पर (मेरठ से श्री भाई बालमुकुन्द व उनके पुत्रादि रात को ही पहुँच गये थे) शव को फोटो लेने के बाद श्मशान को लेगये । देहली के सब मित्र व रिश्तेदार व आर्य समाज के प्रमुख नेता स्व० श्री लाला नारायणदत्त, ला० ओमप्रकाश आदि अर्थी के साथ थे, पुष्कल घी चन्दन व सामग्री के साथ वैदिक रीति से अन्त्येष्टि संस्कार किया गया जो श्री पं० धर्मदेव वि० वा० जी ने कराया । मैं इस दुर्घटना के समय अपनी पत्नी प्रेमदेवी जी सहित रामगढ़ आश्रम जिला नैनीताल में था । तार

से सूचना पाने पर हम दोनों १३ ता० को चलकर देहली पहुँचे । दश दिन तक घर पर हवन व वेद पाठ किया गया। २० ता० को वेद उपनिषद् आदि का पाठ व उपदेश होकर विशेष यज्ञ हुआ । २१ जुलाई को मैं प्रेमदेवी सहित ज्वालापुर आश्रम चला गया।

१४—खण्ड जयपुर लखनऊ आदि की यात्रा

अ० (१०६)–जयपुर की यात्रा—सन् १६४६ की शरद् ऋतु मे मैं नवम्बर मास में जयपुर आकर अपने पुत्र डा० प्रकाश स्वरूप के पास रहा क्योंकि हरद्वार व ज्वालापुर से जयपुर में शीत बहुत कम होता है ।

२७ जनवरी को वसन्त पंचमी के दिवस कांग्रेस के प्रधान मन्त्री श्रीशंकर राव देव तथा का० का० के सदस्य श्री प्रफुल्लचन्द घोष के साथ वनस्थली गया जहां राजस्थान में सबसे बड़ा कन्या महाविद्यालय गुरुकुल के आदर्श पर चलता है, श्री पं० हीरालाल शास्त्री जी (प्रधान मंत्री राजस्थान सरकार) ने जो विद्यालय के संस्थापक हैं स्वयं अपनी मोटर में हम सबको लेजाकर विद्यालय दिखलाया। ३०० कन्याएँ उस समय विद्यालय में शिक्षा पारही थीं। अध्यापक व प्रबन्ध करने वाले ७० व्यक्ति थे, हिन्दी, संस्कृत, अर्थ शास्त्र, राजनीति व कला आदि की पंचमुखी शिक्षा दी जाती है । विद्यालय उत्तरोत्तर उन्नति कर रहा है।

अ० १०७—लखनऊ में सेठ वल्लभदासजी की पुत्री का विवाह—फरवरी सन् १६४७ में मैं जयपुर से आगरा ठहरता हुआ लखनऊ बा० वल्लभदासजी के भारत आश्रम में रहा क्योंकि १७ फरवरी को उनकी पुत्री प्रेमलता का विवाह बदायूं निवासी श्रीमान् हरिश्चन्द्र के साथ होना था जिसमें पुरोहित का कार्य करना मैंने स्वीकार कर लिया था। विवाह वैदिक रीति से हुआ। उसकी विधि लगभग संस्कार विधि के आधार पर और कुछ उस विधि के अनुसार जो माननीय श्री पं० जवाहरलालजी ने अपनी पुत्री श्रीमती इन्दिरा के विवाह के लिये तैयार कराई थी छपवा दी गई थी और वर कन्या के सिवाय सब बारातियों को और दर्शकों को संस्कार के समय बांट दी गई थी। विवाह बड़े आनंद पूर्वक हुआ और सब दर्शकों ने सब कृत्यों को बहुत रुचि के साथ देखा।

अ० (१०८)—सीतापुर व नीमसार की यात्रा—लखनऊ से २० फरवरी सन् १६४७ को मैं सीतापुर को गया जहां उस समय मेरे ज्येष्ठ पुत्र श्री ज्योतिस्वरूप डिप्टी कलक्टर थे। उन दिनों वहां **नीमसार की परिक्रमा** और उसका मेला हो रहा था। नीमसार एक प्रसिद्ध तीर्थ है जिसका प्राचीन नाम नैमिषारण्य है, उसका पुराणों में बड़ा माहात्म्य है, महा भारत तथा उपनिषदों में भी वर्णन है। पौराणिकों का कथन है कि श्री०व्यास, पाराशर, सूत व शुकदेव आदि ने इसी स्थान पर रहकर

महाभारत व पुराणों की रचना की थी। फाल्गुण मास की अमावस्या से पूर्णिमा तक नीमसार से प्रतिदिन लगभग ५ हजार मनुष्यों की यात्रा चलती है जो ३० मील का चक्कर करके (जिसका मार्ग नियत है) मिसरिख स्थान पर पहुँचती है, जहां एकादशी से पूर्णिमा तक एक बड़ा मेला लगता है, और जहां दधीचि का मन्दिर व ताल है। इस परिक्रमा में बहुत से साधु भी आते हैं। कोई अच्छे साधु भी होते हैं, मुझको २ बहुत योग्य साधु मिले, एक स्वामी नर्वदानन्दजी जो हिन्दू प्रार्थना समिति के अध्यक्ष हैं, दूसरे श्री नारायण स्वामी जो बड़े शांत, गम्भीर और तपस्वी हैं।

इन दोनों साधुओं का कुछ वर्णन देना उचित होगा। स्वामी नर्वदानन्द जी एक उदार विचारों के योग्य संन्यासी हैं। उनका नीमसार में एक आश्रम है जिसमें कुछ वानप्रस्थ व ब्रह्मचारी रहते हैं। इनकी **हिन्दू प्रार्थता समिति** का यह उद्देश्य है कि सब हिन्दू सूर्यास्त के नियत समय पर प्रतिदिन ईश्वर की प्रार्थना किया करें। प्रार्थना की विधि छपी हुई है जो अच्छी है और साम्प्रदायिक भावों से रहित हैं। उनके उपदेशों में देश-भक्ति, स्वदेशी, व हिन्दी प्रेम तथा सदाचार की शिक्षा रहती हैं। उनको हिन्दुओं के सुधार की सच्ची लगन है।

श्री स्वामीनारायण मेले से १॥ मील दूरी पर एक केवल कोपोन पहने हुए बैठे हुए मिले। बहुत शांत, गम्भीर व उच्च विचार के सन्यासी हैं। अधिकतर हिमालय के बर्फीले स्थानों

में घूमते रहते हैं। मानसरोवर भी जाते हैं। जो लोग उनके पास जाते हैं वे उन सबको नीचे लिखी शिक्षायें देते हैं जो बहुत अच्छी हैं:—

(१) किसी की निन्दा मत करो।
(२) अपनी प्रशंसा मत करो।
(३) जो तुम्हारी निन्दा करे उसको धन्यवाद दो।
(४) अपने दोषों को देखते रहो।
(५) किसी को दुःख न दो।
(६) सत्य बोलो और सत्य व्यवहार करो।
(७) ईश्वर का भजन करो।

मैंने नीमसार के मेले के सिवाय सीतापुर में आंखों का सुप्रसिद्ध अस्पताल देखा।

अ० (१०६)—**मेरठ यात्रा**—६ मार्च सन् १६४७ को मैं सीतापुर से मेरठ चला गया। ता० १० मार्च सन् १६४७ को श्री प्यारेलालजी की ट्रस्ट कमेटी की मीटिंग में भाग लिया। ११ मार्च सन् १६४७ को मैंने मेरठ में अपना मकान जो मेरी निजी सम्पत्ति थी २० हजार रुपये मूल्य पर अपने भतीजे (भाई बालमुकन्द के पुत्र) मगनस्वरूप को वय करके रजिस्टरी करादी, और १२ मार्च सन् १६४७ को लगभग सब रुपया अपने पुत्रों के नाम वसीयतनामे के अनुसार ५ वर्ष की व १२ वर्ष की मियाद पर पोस्टल कैश व नैशनल सैविंग सर्टिफिकेट में जमा करा दिया।

अ० (११०)—ज्वालापुर पहुँचना—१३ मार्च सन् १९४७ को मैं मेरठ से चलकर ज्वालापुर पहुँच गया। मेरी स्त्री श्रीमती प्रेमदेवीजी पहले ही से वहां थी क्योंकि वे मेरे साथ नवम्बर १९४६ में जयपुर नहीं गई थीं, आश्रम में ही निवास करती रहीं।

अ० (१११)—श्रीनारायण स्वामी का स्वर्गवास—श्रीनारायण स्वामी को मार्च १९४७ से मूत्र का बढ़ा हुआ रोग रहा। मई मास में लाहोर में डाक्टरी परीक्षा हुई उससे मसाने में कैंसर Cancer रूपी असाध्य रोग पाया गया। १५ अक्टूबर सन् १९४७ को बरेली में उनका स्वर्गवास हो गया। वहां के प्रसिद्ध आर्य डाक्टर श्रीश्यामस्वरूपजी ने जो श्री स्वामी जी के भक्त भी थे बड़ी श्रद्धा व लगन के साथ उनकी चिकित्सा व सुश्रूषा की। श्री स्वामी वेदानन्दजी उनके स्थान में दयानन्द सन्यासी वानप्रस्थ मण्डल के अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

कठ उपनिषेद का अंग्रेजी भाष्य—अगस्त १९४७ में मैंने कठ उपनिषद् का अंग्रेजी भाष्य जो जयपुर में जाने से पहले आरम्भ कर दिया था समाप्त किया। छपने के लिये सार्वदेशिक सभा को भेजा गया।

अ० (११२)—ज्वालापुर व हरद्वार में सिंध के शरणार्थियों की सेवा—ज्वालापुर आश्रम में निवास करते हुए हरद्वार स्थित पंजाब व सिंध से आये हुए शरणार्थियों के भोजन

व वस्त्र वितरण के लिए एक कमेटी बनाई गई जिसका मैं अध्यक्ष रहा। पंजाब प्रादेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री खुशहालचन्द जी (वर्तमान श्री आनन्द स्वामीजी) के उद्योग से अमृतसर के प्रसिद्ध दानशील आर्य बाबा गुरुमुखसिंहजी से इस कार्य के लिए कुछ धन मिल गया। शेष कुछ चन्दा आश्रम में व आश्रम के बाहर से किया गया। मार्च सन् १६४८ में इस समिति का कार्य समाप्त हो गया।

अ० (११३)—ज्वालापुर में रोग वृद्धि—सन् १६४८ में ज्वालापुर में मेरा स्वास्थ्य गिरता ही चला गया। बदहजमी Dyspepsia अर्श Piles व मूत्ररोग Prostrate जो पुराने रोग दबे हुए थे वे वृद्धावस्था के कारण बढ़ते गये। गुरुकुल कांगड़ी के योग्य ए० सर्जन श्री डा० चिम्मन लाल ने अर्श व प्रोस्ट्रेट के लिये कुछ इन्जेकशन दिये, जिनसे कुछ थोड़ा लाभ हुआ पर रोग बढ़ता ही गया। जून के मास में ऋतु परिवर्तन व गर्मी से बचने के अभिप्राय से मैं मंसूरी में अपने जामाता व सुप्रसिद्ध होमियोपैथ श्री० डा० रघुवंशशरण रस्तोगी के पास ठहरा जुलाई के आरम्भ में वापिस आगया।

अ० (११४)—वानप्रस्थ आश्रम में सामवेद का गायत्री संपुटयज्ञ—वानप्रस्थाश्रम में नवरात्र के अवसर पर अक्टूबर १९४८ में श्री स्वामी वेदानन्द जी की अध्यक्षता में सामवेद का गायत्री सम्पुट यज्ञ हुआ जिसका तात्पर्य यह है कि हर होता सामवेद का एक मन्त्र पढ़ने के बाद एक बार गायत्री मन्त्र

का पाठ करता था। इससे लाभ यह था कि गायत्री मंत्र के अर्थ की सबको जानकारी होने से उस परध्यान लगना सुगम और संभव था। इस लिये सामवेद के मंत्रों के अर्थ न जानते हुए भी होताओं का ध्यान यज्ञ में एकाग्र रहता था। यज्ञ बड़े आनन्द पूर्वक हुआ। पूर्णाहुति ६ अक्टूबर १६४८ को हुई जिसमें श्री स्वामी जी ने होताओं के सिवाय सब उपस्थित सज्जनों को आहुति देने का अवसर दिया। इस प्रकार पूर्णाहुति बड़े समारोह से हुई। स्वामी जी का उत्तम उपदेश हुआ। मेरा भी भाषण हुआ। श्री कोटूराम जी की ओर से सब आश्रम वासियों व उपस्थित सज्जनों का ब्रह्मभोज हुआ।

अ० (११५)–नवम्बर सन् १६४८ की विशेष घटना— नवम्बर मास में पेशाब का रोग Prostrate बहुत बढ़ गया। १६ नवम्बर सन् १६४८ को जब मैं गुरुकुल अस्पताल से लौटकर अकेला आश्रम को आरहा था तो मार्ग में गिर कर बेहोश होगया। लगभग १॥ घन्टा बेहोश पड़ा रहा। पीछे उठ कर दो ब्रह्मचारियों के सहारे से अपनी कुटी में पहुँचा। इस दुर्घटना के बाद श्रीमती प्रेमदेवीजी की सलाह से यह निश्चय किया गया कि मुझको ज्वालापुर छोड़कर जयपुर जाकर अपने पुत्र डा० प्रकाश स्वरूप के पास रहना चाहिये। उनकी धर्मपत्नी डा० सुभद्रा M. B. B .S. भी डाक्टरी में बहुत योग्य हैं। उसी समय तार दिया गया। २१ नवम्बर सन् १६४८ को मेरे पुत्र कान्ति स्वरूप जयपुर से आगये। देहरा

दून से से मेरी पुत्री सुशीला व डा० रघुवंश जी भी आगये।

अ० (११६)—ज्वालापुर से जयपुर को प्रस्थान— २५ नवम्बर की सायंकाल मैं व प्रेमदेवी जी कान्ति स्वरूप के साथ चलकर २६ ता० के प्रातः काल देहली पहुँचे, वहां एक दिन ठहर कर (और श्री डा० स्वामी ज्ञानानन्द जो के दर्शन करके जिनका विस्तृत परिचय आगे दिया जायगा और जो अब नैशनल फिजिकल लैबोरैटरी देहली में ऐसिस्टेंट डायरेक्टर का काम कर रहे हैं), २८ नवम्बर १९४८ को हवाई जहाज से जयपुर पहुंच गये।

अ० (११७)—जयपुर में आगमन—मेरे पुत्र डा० प्रकाश स्वरूप ने जो सन् १९४३ से अपनी धर्मपत्नी डा० सुभद्रा M. B. B. S. के साथ यहां प्रैक्टिस कर रहे हैं, शहर से २ या २॥ मील बाहर स्टेच्यू पार्क के पास पृथ्वीराज रोड पर शुद्ध स्थान पर एक अच्छी कोठी तय्यार कराली है और दो वर्षसे उसमें रहते हैं। मेरे और अपने माता के रहने के लिये उन्होंने कोठी का सबसे अच्छा कमरा दे दिया जिसमें हम बड़े आराम से रहने लगे। दोनों ने मेरे रोग का पूरा हाल समझ कर उस की चिकित्सा आरम्भ की। नगर के एक प्रसिद्ध और अनुभवी डाक्टर जी० एन० सेन महोदय की भी सलाह ली गई। ज्वालापुर में जो मूत्र और अर्श के रोग बहुत बढ़ गये थे १५ दिन में कम होगये और एक मास के भीतर लगभग पूर्व स्थिति पर आगये।

अ० (११८)–जयपुर में कांग्रेस का वृहद अधिवेशन– १४ दिसम्बर से १६ दिसम्बर तक कांग्रेस का वृहद्अधिवेशन जयपुर में हुआ। शहर से बाहर राज भवन के समीप गान्धी नगर के नाम से एक विशाल मंडप व बाजार आदि बनाये गये थे, १४ ता० को श्री विनोवा भावे जी ने गांधी नगर में सर्वोदय समाज व प्रदर्शनी का उद्घाटन किया। १५ ता० कांग्रेस के मनोनीत सभापति (श्री सीतारमैय्या) दोपहर को जयपुर पहुंचे और ५ बजे तक उनका जलूस शहर में होकर निकला। १६ दिसम्बर से ध्वजारोहण होकर विषय निर्वाचिनी सभा का अधिवेशन हुआ और १७ दिसम्बर से खुले अधिवेशन हुए। डा० प्रकाश स्वरूप जी के साथ प्रतिदिन इस महोत्सव में जाकर मैं भी उसका आनन्द उठाता रहा।

अ० (११६)–जयपुर आर्यसमाज—जयपुर में बहुत पूर्व समय से आर्य्य माज स्थापित है। परन्तु समाज का मन्दिर मेरे निवास स्थान से लगभग २॥ मील दूरी पर है। इस कारण और विशेषकर अपने स्वास्थ्य की हीन दशा के कारण मैं समाज के साधारण साप्ताहिक सत्संगों में जाकर भाग नहीं ले सकता, पर्वादि अवसरों पर वा विशेष सूचना मिले तब अवश्य उपस्थित होकर भाग लेता हूँ। मेरे जयपुर आने के बाद तीन बार आर्य समाज के वार्षिक अधिवेशन हुए, मैंने समाज के आदेश से सभापति का कार्य किया और जो अन्य सेवा मुझको दी गई संपन्न कीं।

अ० (१२०) जयपुर सार्वजनिक पुस्तकालय— जयपुर नगर में महाराजा पब्लिक लाईब्रेरी के नाम से एक अच्छा सार्वजनिक पुस्तकालय है जिसमें अंगरेजी, हिन्दी, संस्कृत पुस्तकों का उत्तम संग्रह है, और कई अच्छे मासिक, साप्ताहिक, व दैनिक पत्र आते हैं। मुझको पढ़ने में विशेष रुचि है, मैं पुस्तकालय में भाग लेकर नित्य उसकी पुस्तकें लेकर लाभ उठाता हूँ उसमें नवीन पुस्तकें भी जो उपयोगी हों मंगवाने के प्रस्ताव करता रहता हूँ। पुस्तकालय के अधिकारी मेरे सुझावों का बहुधा आदर ही करते हैं। प्रबन्ध कमेटी के प्रेजीडैण्ट श्री रायसाहब पं० सूर्य्यनारायण शर्मा हैं, जो बड़े योग्य व विद्या प्रेमी सज्जन हैं। पुस्तकालय के मैनेजर श्री गंगाशरण माथुर भी सुयोग्य और अपने कार्य्य में दक्ष हैं।

भाग ३
जयपुर में निवास
खंड १५—जयपुर में मेरा स्वाध्याय व लेखन कार्य

अ० (१८१)—जयपुर में मेरा स्वाध्याय का कार्य— मुझको स्वाध्याय से आरम्भ काल से ही प्रेम है। इसलिए ज्वालापुर में मेरे पास पुस्तकों का अच्छा संग्रह हो गया था। पुस्तकें अधिकांश धार्मिक विषयों की थी। स्वास्थ्य के गिरने से जब मैंने ज्वालापुर से बाहर जाने का विचार किया तो उससे पूर्व मैंने बहुत सी पुस्तकें ज्वालापुर वानप्रस्थाश्रम के पुस्तकालय को दे दीं (जो उस समय दयानन्द संन्यास वानप्रस्थ मण्डल के अधीन था)। कुछ पुस्तकें ज्वालापुर महाविद्यालय के पुस्तकालय को दे दीं। शेष जो पुस्तकें रहीं उनमें से भी मैं बहुत कम पुस्तकें अपने साथ जयपुर लाया था। वैदिक साहित्य की तथा उपनिषद् गीता, पातंजल योग प्रदीप, व कुछ श्री अरविन्द कृत पुस्तकें Life Divine 3 volume आदि थीं। मेरे साधारण दैनिक स्वाध्याय के लिए ये पर्याप्त ही हैं। परन्तु मुझ को नवीन वा अन्य पुस्तकों के पढ़ने की भी इच्छा रहती है। उपर्युक्त पब्लिक पुस्तकालय के द्वारा तथा अन्य प्रकार में

नवीन पुस्तकों का भी यथासम्भव पठन करता रहा। जयपुर आने के पश्चात् अब तक जिन पुस्तकों वा विषयों का स्वाध्याय मैं कर सका वे विशेषतः निम्न प्रकार हैं।

(क) **पुराणों** का मेरा ज्ञान जयपुर आने से पूर्व अपूर्ण ही था। यहां आकर मैंने श्रीमद्भागवत, वायु पुराण गरुड़ पुराण व स्कंद पुराण पढ़े, कुछ भाग शिव पुराण का भी पढ़ा।

(ख) बौद्ध धर्म का साहित्य मैंने भली प्रकार देख रक्खा था। परन्तु **जैन धर्म** को नहीं। यहाँ आकर श्री पं० चैनसुखदास जी से मिलकर जो दिगम्बर जैन संस्कृत पाठशाला के आचार्य हैं, और बड़े भद्र पुरुष हैं जैन शास्त्र का विवेचन किया। कई बार उनसे वार्तालाप हुआ। उन्होंने मुझको आचार्य उमा स्वामी कृत तत्वार्थ सूत्र (जिसका दूसरा नाम मोक्ष शास्त्र है) पढ़ने को दिया। यह जैनियों का परम मान्य ग्रन्थ है और कुछ पाठ भेदों के साथ दिगम्बर व श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदाय उसको मानते हैं। मैंने उसको ध्यानपूर्वक पढ़ा। जैनियों की कुछ अन्य पुस्तकें भी देखीं।

अ० (१२२)—प्राचीन भारत के इतिहास सम्बन्धी खोज—यह बड़ा जटिल प्रश्न है। विदेशी शासन के समय भारत के जो इतिहास लिखे गये वे नितांत पक्षपात पूर्ण थे इसको सब जानते हैं। इसमें कोई आश्चर्य की बात भी नहीं। यह स्वाभाविक है कि विजेता लोग अपनी संस्कृति का विजित देश की संस्कृति से अधिक महत्व दिखलाते हैं। अंग्रेजी शासन के इतिहासों में अंग्रेजी लेखकों का, मुस्लिम शासन के इतिहासों

में मुस्लिम लेखकों का पक्षपात स्पष्ट रूप से पाया जाता है। भारत के स्वतन्त्र हो जाने के बाद से भारत सरकार तथा जनता दोनों की यह तीव्र इच्छा रही है कि भारतवर्ष का नवीन इतिहास निष्पक्षता पूर्वक ऐसा तैयार कराया जाय जिससे विद्यार्थियों व देश की नई सन्तति के हृदय में देश-प्रेम व देश के गौरव के भाव जागृत होवें। सरकार की ओर से इस उद्देश्य से भारतीय इतिहास की एक समिति का निर्माण हो चुका है। उसकी ओर से प्रकाशन का कार्य आरम्भ नहीं हुआ।

मध्यकाल व वर्तमान युग का सच्चा इतिहास तैयार करने में नेताओं को भारी कठिनाई नहीं होगी, क्योंकि उसके लिए पूरी सामग्री पुस्तकों तथा सरकारी दफ्तरों के Records पत्रों व व रजिस्टरों में मिल सकेगी, और उनकी जांच व खोज का कार्य जारी भी हो गया। परन्तु प्राचीन भारत के इतिहास के सम्बन्ध में एक कठिन समस्या है। ऋषि दयानन्द ने वेदों व प्राचीन शास्त्रों के आधार पर प्राचीन भारत की संस्कृति का एक चित्र जगत के सामने रक्खा है। आर्यसमाज उसको सत्य मानता है। परन्तु वह योरुपीय विद्वानों के वर्णन से बहुत भिन्न है। पं० भगवद्दत्त जी सुप्रसिद्ध रिसर्च स्कालर ने बड़ी खोज के पश्चात् अपना भारतवर्ष का इतिहास लिखा और एक बृहद् इतिहास माला की योजना तैयार की है जो १२ भागों में समाप्त होगी। उसका पहला भाग "भारतवर्ष का बृहद् इतिहास" प्रकाशित हो गया जो भूमिका रूप है। मैंने उनके दोनों ग्रन्थों को

ध्यानपूर्वक पढ़ा। पं० भगवद्दत्तजी ने भगीरथ परिश्रम किया है। परन्तु उनका केवल योरुपीय विद्वानों ही से नहीं, किन्तु बहुत से वर्तमान भारतीय विद्वानों से भी भारी मतभेद है। कांग्रेस अथवा भारत सरकार की ओर से जो इतिहास माला तैयार की जायगी, और जिसके अनुसार सब सरकारी स्कूल, कालिज, पाठशालाओं के विद्यार्थियों के लिए पुस्तकें तैयार कराई जायेंगी उसकी विचारधारा अभी प्रकाशित नहीं हुई। परन्तु भारतीय विद्या भवन बम्बई की ओर से, जिसके अध्यक्ष श्री कन्हैयालाल मुंशी जी (वर्तमान गवर्नर उत्तर प्रदेश) हैं और जिसके सदस्य भारत के कतिपय प्रतिष्ठित नेता हैं, दो ग्रन्थ अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित हो चुके हैं, एक **वैदिक एज** Vedic Age नाम से जिसमें भारत के प्रारम्भिक युग का वर्णन है, दूसरा Imperial unity नामक जिसमें मौर्य, शुंग, व कुशन वंश तक के भारत का इतिहास है। मैंने इन दोनों ग्रन्थों को पढ़ा, योग्यतापूर्वक श्री मुंशीजी की अध्यक्षता में लिखे गये हैं। दोनों में मुंशीजी की विश्वस्त भूमिका है। प्रत्येक ग्रन्थ के विविध भागों के भिन्न भिन्न लेखक हैं। Vedic Age में १० और Imperial Unity में २० विद्वानों के नाम लेखक रूप से हैं, वे सभी भारत के प्रसिद्ध विद्वान् हैं। परन्तु पं० भगवद्दत्त जी उनके विचारों से सन्तुष्ट नहीं, अपने "भारतवर्ष का बृहद् इतिहास" की भूमिका में वे लिखते हैं- "वस्तुतः मुंशीजी का ग्रन्थ पक्षपाती योरुपियन लोगों की कल्पनाओं का संग्रह मात्र है।" मेरा पं० भगवद्दत्त जी

से इस विषय पर पत्र व्यवहार हुआ। कई पत्र मैंने लिखे, उनके उत्तर आये। लगभग उपर्युक्त भारतीय विद्वानों के लेखों को वे अमान्य समझते हैं। पर फिर गिनेचुने आर्य समाजी विद्वानों के सिवाय और कितने भारतीय विद्वान् शेष रहेंगे ? मेरे विचार में आर्य-समाज के लिए प्राचीन भारत की संस्कृति कठिन समस्या बन गई है।

अधिक मत भेद प्राचीन घटनाओं व पुरुषों के काल गणना का है, जिसमें शायद आर्य विद्वानों को समझौता करना पड़ेगा। धार्मिक सिद्धान्तों को छोड़कर शेष बातों में (जैसा ऐतिहासिक काल गणना भी है) समझौता करना कोई दोष नहीं समझना चाहिए, यदि सत्य का अनुसरण किया जाता है। महेंजोदारों व हड़प्पा की खुदान से सिन्ध घाटी की सभ्यता Indus Valley Civilisation का प्रचार होने से यह भी एक नया प्रश्न हो गया है कि उक्त सभ्यता वेदों से प्राचीनतर है वा पीछे की है। योरुपीय वैज्ञानिक उसको ईसा से ३००० वा ४००० वर्ष पूर्व की और कैल्डिया, वैबीलोनिया, ऐसीरिया व सुमेर सभ्यता के समकालीन मानते हैं। आगे की खोज से इन देशों की संस्कृति की प्राचीनता में कुछ कमी होने की सम्भावना नहीं मालूम होती। परन्तु वेदों और वैदिक साहित्य का समय योरुपीय विद्वानों की दृष्टि में अभी तक अनिश्चित ही है। वह यदि उपर्युक्त देशों की संस्कृति से प्राचीनतर सिद्ध हो जाय तो सिन्ध घाटी की सभ्यता वेदों से पीछे ही की मानी जायगी। वैदिक

साहित्य के ठीक समय को निश्चित कराने के लिए अभी तक जो खोज की गई वह अधूरी ही है। मैं अपने अनुभव की एक घटना का उल्लेख करता हूँ। सन् १६०८ ई० में जब मैं गोरखपुर जिले के कसिया विभाग में डिप्टी कलक्टरी का काम करता था तो पुरातत्व विभाग के सुप्रसिद्ध विद्वान श्री डा० वोगल Dr. Vogel (जो जाति के डच थे) कसिया में गौतम बुद्ध के निर्वाण के उस स्थान की "कुशी नगर" की तलाश में खुदाई करा रहे थे जिसमें कुछ वर्ष पीछे सफलता हो जाने पर कसिया स्थान का वास्तव में कुशीनगर होना सिद्ध हो गया। मैं प्रतिदिन जाकर डा० वोलगा के खुदान कार्य को देखा करता था और गुप्त समय के जो सिक्के, मुहर व अन्य वस्तुयें खुदाई में निकलती थीं उन पर आश्चर्य प्रकट करता था। एक दिन श्री डा० वोगल ने कहा कि जो वस्तु यहां निकलती हैं वे पुरातत्व विभाग की दृष्टि से कुछ भी विचार योग्य नहीं। वे ऐसीरिया, वेबीलोनिया आदि देशों में जो ६ या ७ सहस्र वर्ष पुराने नगरों के खंडहर मिलते हैं उनका वर्णन करते थे और कहते थे कि भारतवर्ष में यदि महाभारत व रामायण काल के कोई स्थान मिलें तो संसार भर की दृष्टि में एक आश्चर्यजनक बात हो सकती है। मैंने उनको हस्तिनापुर के खण्डहरों का जिक्र जो मेरठ से लगभग ४० मील दूरी पर स्थित है, और जिसके समीप अब उ० प्र० के माननीय श्री पन्त महोदय की सरकार ने सहस्रों शरणार्थियों के रहने के लिए घर व खेती के लिए विस्तृत

खेत बना दिये हैं। डा० वोलगा ने वहां जाकर खोज करने की इच्छा प्रकट की। मैंने एक पत्र श्री स्व० मेघराजजी मवाना निवासी को जो नाते में मेरे मामा होते थे लिखा था जिनकी हसनपुर कस्बे (पुरानी हस्तिनापुरी) में जमींदारी थी। मुझे याद पड़ता है कि श्री मेघराज ने कुछ प्रवन्ध किया था और डा० वोगल उस प्रदेश को देखने के लिये गये थे। पर कुछ अधिक उद्योग नहीं हो सका और सफलता न हुई।

मैंने प्राचीन भारत के इतिहास बिषयक और कई नये ग्रन्थ देखे। एक "भारतीय इतिहास की भूमिका" (प्रथम भाग, प्राचीन भारत) श्री डा० राजवली पांडेय M. A. L. L. B. का जो बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में प्राचीन भारतीय इतिहास व संस्कृति विभाग के अध्यक्ष हैं, लिखा हुआ देखा। उनके बिचार भी साधारणतया योरोपीय विद्वानों के ही अनुकूल हैं। इस विषय की जो पुस्तकें मुझको मिलती हैं देखता रहता हूँ, कार्य विशाल है और उसके लिए बहुत परिश्रम व खोज की आवश्यकता है। पं० भद्रदत्तजी के अनुसन्धान ग्रन्थों का ऐसा प्रचार भी नहीं हुआ जैसा होना चाहिए। मैंने एक पत्र में यह सुझाव रक्खा था कि उक्त पण्डित जी अपने ग्रन्थों के मुख्य आशयों का सारांश एक २०० वा ४०० पृष्ठों की संक्षिप्त अंग्रेजी पुस्तक में लिखकर योरोपीय तथा अन्य अंग्रेजी भाषी विद्वानों के पास भेजें। उनके पत्र से विदित हुआ कि वे सहमत हुए और यत्नवान हैं।

अ० (१२३)–पत्रों में लेखों का भेजना— अस्वस्थता

के कारण मैं यात्रा के अयोग्य हो गया। जयपुर आर्यसमाज के साधारण साप्ताहिक अधिवेशनों में भी भाग लेना संभव नहीं रहा। ऐसी अवस्था में आर्यमित्र, सार्वदेशिक आदि आर्य पत्रों में समय समय पर कुछ लेख लिखता रहा हूँ। कुछ मुख्य लेखों का विवरण इस प्रकार है—

संख्या	विषय	लिखने का समय	पत्र जिसमें भेजा गया
१	ऋषि जीवनी की खोज, परोपकारिणी सभा उसके आधार पर कार्य कर रही है)	नवम्बर १९५१	आर्यमार्तण्ड (अजमेर)
२	स्व० श्यामजी कृष्ण वर्मा की जीवनी	१९५१	आर्यमित्र
३	योग में मुक्तजीवों का अवतार (श्री स्वामी ओमानन्द कृत पातंजल योग प्रदीप के आधार पर)-	२८ फरवरी ५२	आर्यमित्र
४	पूर्वोक्त लेख पर एक विद्वान् ने कुछ प्रश्न किये। उसके उत्तर में दूसरा लेख—	५ जून ५२	आर्यमित्र
	तथा तीसरा लेख	२९ नवम्बर ५३	आर्यमित्र
५	राधाकृष्ण	१२ दिसम्बर ५३	आर्यमित्र

(उसकी आलोचना में
श्री पं० सातवलेकर जी का
लेख छपा, प्रत्युत्तर में
६ दूसरा लेख)— २० सितम्बर १६५२ आर्यमित्र

(नोट)—राधा का भागवत वा विष्णु पुराण में नाम तक नहीं है। तो भी कृष्ण के साथ राधा का नाम उसी प्रकार प्रचरित है जैसा सीता के साथ राम का नाम। गीत गोविन्द में आध्यात्मिक भाव का लेश भी नहीं, यह एक स्पष्ट बात है। हिन्दी भाषा में राधाकृष्ण के सम्बन्ध में बहुत सहित्य बन गया है और बनता जाता है। इसके विषय में कुछ खोज की आवश्यकता है।

७ क्या उपनिषदों का
सिद्धान्त अद्वैतवाद है ? मार्च १६५२ वेदवाणी
काशी बनारस

८ वेदों में ईश्वर का स्वरूप—दिसम्बर १६५२ तथा वेदवाणी
(२ अंकों में क्रमशः) जनवरी १६५३ बनारस

६ हिन्दी साहित्य की वृद्धि ८ नवम्बर ५२ आर्यमित्र
और आर्य विद्वानों का कर्त्तव्य लखनऊ

१० मृत्यु के पश्चात जीव सितंम्बर १६४४ "सार्वदेशिक"
की गति अर्थात् पुनर्जन्म का पूर्वरूप देहली

इस लेख के साथ मैंने "आर्य विद्वानों के विचारार्थ" शब्द जोड़े थे। इस पर केवल एक लेख सार्वदेशिक के जन० १६५०

के अंक में श्री राजेन्द्रप्रसादसिंहजी ऐडवोकेट आरा का प्रकाशित हुआ था, (जिसका उत्तर मैंने सार्वदेशिक के किसी अगले अंक में दे दिया था)। मैंने अपने लेख में यह मत प्रकट किया है कि मृत्यु के पश्चात् जीव साधारणतया तुरन्त ही दूसरा जन्म धारण नहीं करता, किन्तु कुछ समय चन्द्रलोक वा पितृलोक (वा "प्राणमय" लोक Astral World) में रहता है। ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में इस विषय का कोई विधान नहीं पाया जाता, स्व० नारायण स्वामी जी ने अपने 'मृत्यु व परलोक" पुस्तक में ऊपर दिये हुए मत के विरुद्ध लिखा है। मैंने अपने लेख में उसका उत्तर देने का यत्न किया है।

११ **क्या मनुष्येतर (मनुष्य से उच्चश्रेणी की) देव आदि योनियों का मानना आर्यसमाज के सिद्धान्तों के विरुद्ध है ? (अप्रेल १९५० का वैदिकधर्म)**। इस लेख में मैंने तैत्तिरीय व वृहदारण्यक उपनिषदों के आधार पर यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि पूर्वोक्त उपनिषदों में जो पितर, देव गन्धर्व आदि शब्द आये हैं वे मनुष्य योनि से भिन्न उच्च योनियों के नाम हैं, मनुष्य योनि की अवस्थाओं के नाम नहीं हैं।

१२ भारत के मुसलमानों की शुद्धि का कार्य जुलाई १९५२ सार्वदेशिक देहली

अप्रैल सन् १९५१ में जयपुर में अ० भा० हिन्दू महासभा का एक विशेष अधिवेशन हुआ जिसका उद्देश्य नियमों में

कुछ संशोधन करना था। एक मुख्य संशोधन यह था कि उक्त महासभा में कोई अहिन्दु भी शामिल हो सकता है। मैं भी इस सभा में दर्शक रूप से गया था, श्री डा० नारायण भास्कर खरे सभापति थे। उपर्युक्त संशोधन के समर्थन में श्री डा० खरे ने कहा कि पूर्वकाल में लाखों शक, हूण इत्यादि जो अहिन्दु थे इसी देश में निवास करने लगे, और हिन्दू जाति में हिल मिल गये। हम अब भी मुसलमान वा ईसाइयों को हिन्दू जाति में शामिल करने को तय्यार हैं यदि वे लोग भारत वर्ष को अपनी मातृ भूमि भी मानें और पुण्य भूमि भी स्वीकार करें।

मैंने श्री डा० खरे के उपर्युक्त भाषण के हवाले से एक लेख "**सार्वदेशिक**" पत्र में भेजा (जो जुलाई मास के अंक में छपा था)। उस अंक की एक प्रति मैंने २२-७-५१ को अपने पत्र के साथ डा० खरे महोदय के पास भेजी जिसका उत्तर उन के २८-७-५१ के पत्र में मुझको मिला। मेरे लेखका आशय यह था कि यदि हिन्दू महासभा वास्तव में ऊपर लिखी शर्तों के साथ मुसलमानों को हिन्दू बनाने के लिये तय्यार हो तो आर्य्य समाज व महासभा के सहयोग से शुद्धि व संगठन का कार्य बहुत सुगम हो सकता है। पाकिस्तान के मुसलमानों को छोड़ कर भारत में लगभग ४ करोड़ मुसलमान हैं। इनमें ५ प्रतिशतक से अधिक ऐसे नहीं होंगे जो बाहर से भारतवर्ष में आये हों, शेष सब ऐसे ही हैं कि जो पहले हिन्दू-धर्म के अनुयायीथे। भारत की वर्तमान सरकार ने (जो अपने को Secular (साम्प्रदाय

हीन मानती है), राजनैतिक व आर्थिक अधिकार मुसलमानों को उसी प्रकार दे रक्खे हैं जैसे कि हिन्दुओं को प्राप्त हैं। मुसलमानों की शुद्धि में अड़चन केवल इस कारण हो रही है कि यदि वे हिन्दू (आर्य) धर्म ग्रहण कर लेवें तो उनको हिन्दू समाज में वह सम्मान का स्थान नहीं मिलता जो वे चाहते हैं। यदि हिन्दू महासभा अपने प्रभाव व उद्योग स साधारण हिन्दुओं को इस बात के लिये तय्यार कर सके कि वे जात पांत के भेद का विचार छोड़कर शुद्ध हुए मुसलमानों के साथ परस्पर विवाह करने में संकोच न करें तो शुद्धि का काम जो कई वर्ष से आर्यसमाज करता है और जो ऊपर लिखी परस्पर विवाह की रोक टोक के कारण रुका हुआ है, बहुत सुगम हो सकता है। श्री डा० खरे के २८-७-५१ के पत्र में ये शब्द हैं। "Many thanks for your Letter of 22-7-51. The Hindu Sabha believes in Shuddhi of non Hindus, and also in up-lifting the socalled untouchables to the level of the socalled caste Hindus. In fact, the Hindu Sabha began this agitation long before the Congress. I know that Arya Samaj has also the same idials." डा० खरे महोदय के इस पत्र के उत्तर के साथ मैंने अपनी लिखी "जातिभेद" पुस्तक की एक प्रति भेजी थी, और लिखा था कि यदि हिन्दू महासभा अपनी शाखाओं के द्वारा (यद्यपि उनकी क्रिया शील शाखाओं की संख्या

अधिक नहीं है), शुद्धि के कार्य में भाग लेवें तो यह महत्त्व पूर्ण काम बहुत शीघ्र प्रगति कर सकता है। अ० भा० शुद्धि सभा देहली को चाहिये कि हिन्दू महासभा से ऊपर लिखे अनुसार अनुरोध करे। यह खुशी की बात है कि अब हिन्दू महासभा शुद्धि का कार्य करने का विचार कर रहा है।

(१३) सन् १९५१ की मनुष्य संख्या और उसके संबन्धी कुछ आवश्यक बातें	नवम्बर १९५३	सार्वदेशिक देहली
(१४) इटली के प्रसिद्ध कवि DANTE श्री डांटे लिखित A Vision of Inferno, Purgatoria ant Paradisco. "नरक लोक प्रायश्चित व स्वर्गलोक का दर्शन" तथा गरुड पुराण	जनवरी १९५४	सार्व देशिक देहली
(१५) श्री विदेह जी की वेदार्थ शैली	मार्च सं० २०१०	सविता अजमेर
(१६) आदिम जातियों में आर्य्यसमाज के प्रचार की विशेष आवश्यकता	फरवरी १९५४	आर्य्य मित्र लखनऊ

(१७) राजस्थान की भील जाति में आर्यसमाज के प्रचार की आवश्यता

१० अप्रैल १९५४ आर्यमार्तण्ड अजमेर

अ- १२४—सिनेमा के विषय पर मैंने आर्यमित्र व सार्वदेशिक पत्रों में कई बार लेख लिखे। गत मार्च मास में एक विस्तृत लेख अ० भा० आर्य वीरदल के प्रमुख पत्र मानव पथ के विषेशांक के लिये भेजा था। मेरा निश्चित मत है कि चलचित्र Cinema संसार की श्रेष्ठ कलाओं में एक मुख्य कला है, और प्रचार के लिये सबसे बड़ा साधन है, समाचार पत्रों से भी अधिक प्रभावशाली है क्योंकि पत्रों को केवल शिक्षित लोग पढ़ सकते हैं, परन्तु सिनेमाओं को शिक्षित अशिक्षित पुरुष स्त्री सभी प्रतिदिन लाखों की संख्या में देखते हैं और उनसे प्रभावित होते हैं। वर्तमान सिनेमाओं में अश्लीलताा कामुकता आदि के जो दोष हैं वे सब दूर हो सकते हैं। स्वराज्य होने के बाद जो मन्त्रिगण आये वे देश भक्त होने से उसके सुधार में यत्नवान् हैं। उनके द्वारा बहुत से दोष दूर हो चुके और दूर होते जाते हैं। आर्यसमाज तथा अन्य सुधारकों को इस कार्य में सरकार को सहयोग देना चाहिये और उनके सहयोग से लाभ उठाना चाहिये। सिनेमा सम्बन्धी कानून Cinematograph Act 1952 सन् १९५२ में नया बन गया है जिसके अनुसार यदि सुधार विचार के लोग यत्न करें तो बहुत शीघ्र सिनेमा कला में सुधार हो सकता है। जनता की प्रवृतियों व विचारों को शुद्ध करना भी सुधारकों का कर्तव्य है। मैंने मानव

पथ के विपेशांक के लिये जो लेख भेजा है उसमें इस विषय पर कुछ उपयोगी व व्यवहारिक सुझाव दिये हैं।

अ० (१२५)–ऋषि दयानन्द के चलचित्र का प्रश्न– ऋषि दयानन्द की जीवनी का चलचित्र बनाये जाने के प्रश्न पर भी मेरा मत अनुकूल ही है, मैं कई बार पत्रों में भी अपने विचार प्रकट कर चुका हूं, उनको दुहराने की आवश्यकता नहीं। मैंने हाल में Childrens' Encyclopedia **(बालकों का विश्व कोष)** नाम की ग्रन्थ माला देखी। वह २५०) मूल्य की १० मोटी जिल्दों में है। प्रकाशक ने उसके नाम में "बालकों" का नाम जोड़ा। यह तो एक विनोद वा उपहास की सी बात है' वास्तव में उसमें जो ज्ञान व विज्ञान का भंडार भरा हुआ है वह मुझ जैसे बृद्ध साहित्य सेवी तथा ऐसे ही अन्य शिक्षित लोगों के लिये भी अमूल्य निधि हैं। उसके हर एक भाग में कुछ धार्मिक विषयों पर भी लेख व चित्र हैं। ईसा मसीह के जीवन व शिक्षा पर तो अनेक लेख व चित्र अवश्य होने ही थे, और लगभग प्रत्येक जिल्द में कुछ दिये गये हैं। मैं उनको देखकर प्रकाशक की बुद्धि और ईसाइयों की प्रचार शैली पर चकित होगया। कितना रोचक और स्थायी प्रभाव होता है? इंजील में ईसा का थोड़ा ही जीवन दिया है, बालक अवस्था का कुछ और फिर प्रचार कार्य और यहूदी महन्तों की उद्दण्डता व न्यायालय से दण्डित होने का। बीच के लगभग २० वर्ष का हाल बिलकुल नहीं दिया गया। इसी आधार पर कुछ विद्वानों का अनुमान है कि ईसामसीह

एशिया व भारतवर्ष में आया और कई वर्ष तक रहा। तिस पर भी ईसा के जीवन की बहुत छोटी छोटी घटनाओं के अनेक आकर्षक चित्र इस पुस्तक माला में दिये हैं। ईसा की जीवन सम्बन्धी सब चित्र इस ग्रन्थमाला में शायद एक सहस्र तक होंगे। सब ही अत्यन्त रोचक हैं और शिक्षाप्रद हैं। इसके विरुद्ध ऋषि दयानन्द का लम्बा जीवन पूरा हमारे सामने है उसकी कितनी घटनायें चलचित्र के लिये चुनी जा सकती हैं? इसका कोई पारावार नहीं। यह कलाकार की और उसके सहायकों की योग्यता पर निर्भर है। उसका करोड़ों मनुष्य व स्त्रियों पर जो उसको देखेंगे क्या प्रभाव होगा यह कल्पनातीत है। यह प्रश्न (जैसा इस प्रस्ताव के विरोध में एक लेखक ने किया था) कि उनमें से कोई घटना या वार्ता सिद्धान्त विरुद्ध हो सकती है, एक विचित्र सा ही प्रश्न है। यदि ऋषि दयानन्द का चलचित्र बनाने का कभी निश्चय किया जाय तो उस चित्र के अंगों को ऐसी दृष्टि से नहीं देखा जा सकता जिस दृष्टि से धार्मिक ग्रन्थ की जांच की जाती है। तो भी यदि ऐसा चल चित्र बनाया जाने का निश्चय होगा तो कुछ योग्य विचारशील व प्रतिष्ठित आर्य नेता इस कार्य की देख रेख के लिये अवश्य नियत होंगे। वे इस बात का ध्यान रखेंगे कि चित्र में कोई अनुचित या हानिकारक बातें या घटनायें न आवें।

उपर्युक्त लेख लिखा जाने के पश्चात् 'सार्वदेशिक की धर्मार्थ सभा' ने अपने २६-४-५३ के अधिवेशन में पूर्वोक्त प्रस्ताव के संबंध में जो निश्चय किया उसके शब्द इस प्रकार हैं। "वर्तमान देशकालिक

परिस्थिति में महर्षि दयानन्दजी का फिल्म बनाना उचित नहीं।" यह निश्चय भी बहुमत से हुआ। आशा है कि अनुकूल परिस्थिति होने पर धर्मार्थ सभा उचित विचार करेगी। यह खुशी की बात है कि **संस्कृति पिक्चर्स** बम्बई ने जिस के संस्थापक श्री भगवान दासजी हैं वर्षों के लगातार परिश्रम व सहस्रों रुपया खर्च करके "आर्य समाज दर्शन" नामक एक फिल्म तैय्यार करली है। राजस्थान आर्य प्रतिनिधि सभा के पूर्व प्रधान श्री जियालालजी ने राजस्थान का आर्यसमाजों में उस फिल्म के दिखाने का विचार किया। अक्टूबर १६५३ के "आर्य" पत्र में (जो आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का मुख पत्र है) राजस्थान सभा के मंत्री श्री पं० रमेशचन्द्र शास्त्री जी के नाम से इस फिल्म का नोटिस प्रकाशित हुआ है, जो इस प्रकार है–'इस चित्र में महर्षि दयानन्दजी के जीवन काल के सम्बन्धी स्थानों के दृश्य (जैसे टंकारा, मोरवी, मथुरा, जोधपुर, जयपुर, अजमेर, शाहपुर, इत्यादि होंगे।) इसके साथ मधुर संगीत, सामवेद गान तथा अन्य सारगर्भित विषयों का विवेचन सुनने को मिलेगा। उच्चकोटि के आर्य विद्वानों संन्यासियों, एवं नेताओं के दर्शन तथा भाषण, आर्य संस्थाओं की सुन्दर झांकी, मन मोहक प्राकृतिक दृश्य शिक्षा प्रद कथाएं अत्यन्त सुन्दर ढंग से प्रस्तुत की गई हैं। एक बार जब आप इस प्रचार फिल्म को देखेंगे तो आप का हृदय प्रसन्नता से भर जायगा"। मैंने इस नोटिस के आधार पर एक लेख आर्य मार्तण्ड पत्र अजमेर में प्रकाशनार्थ भेजा है जिस में राजस्थान प्रतिनिधि सभा को इस साहस पूर्ण

कार्य के लिये बधाई दी है और यह आशा प्रकट की है कि **संस्कृति पिक्चर्स** बम्बई का यह उद्योग सफल होकर अन्य विचार शील व संपन्न आर्य समाजी सज्जनों को भी इस ओर प्रगति करने का उत्साह होगा। मेरा पूर्वोक्त लेख ५ दिसम्बर सन १९५३ के आर्य मार्तण्ड में छप गया।

अ०—१२५—(ख) पुस्तक प्रचार का काम—मैंने **कठ उपनिषद्** अंगरेजी अनुवाद व भाष्य सहित प्रकाशनार्थ सार्वदेशिक सभा के सपुर्द किया था। वहां कुछ समय तक प्रेस कापी मिली नहीं। अन्त में श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय M. A. जी ने (जो सभा के मन्त्री थे) अपनी लेखनी से उस में मेरी संक्षिप्त जीवनी के रूप में प्राग्वचन लिखकर जोड़ दिया और मेरा फोटो ब्लाक वा चित्र भी रखा जिससे पुस्तक का रूप अच्छा होगया। पुस्तक की छपाई का काम भी मेरे सपुर्द किया, मैंने जयपुर के **अजमेरा प्रेस** में छपवाई। खेद है कि प्रूफ शोधने पर भी कुछ छापे की भूलें बनी रहीं। तो भी पुस्तक अच्छी हो गई। मैंने प्रत्येक मन्त्र का भाषान्तर देने से पूर्व उसके पदों के अर्थ भी दे दिये हैं जिससे स्वाध्याय सेवियों को सुगमता होगी। अनुवाद के साथ स्थान स्थान पर आवश्यक टिप्पणी भी दी गई हैं और एक Introduction **उपोद्घात** दिया गया है, जिस में कठ उपनिषद सम्बन्धी कुछ आवश्यक विषयों पर विचार किया गया है। "जाति भेद" जो मेरी लिखी Caste System का हिन्दी

अनुवाद है गत वर्ष **आर्य प्रतिनिधि सभा युक्त प्रदेश** द्वारा प्रकाशित हुआ। स्वराज्य प्राप्ति से देश में जो सुधार आदि हुए तथा गत मनुष्य संख्या से जो परिवर्तन हुए उन को दृष्टि में रख कर मैंने इस संस्करण में पुस्तक को वर्तमान परिस्थिति के पूर्णतया अनुरूप बनाने का यत्न किया है। इससे पुस्तक पहले से अधिक उपयोगी होगई है। इसके प्रचार का प्रयत्न होता रहा। मूल अंगरेजी पुस्तक Caste System की भी मांग रहती है। सो वह **आर्य्य प्रतिनिधि साहित्य मंडल अजमेर** की ओर से शीघ्र प्रकाशित होने लगेगा।

Fountain head of Relegion (अंगरेजी) के पहले ४ संस्करण **आर्य प्रतिनिधि सभा युक्त प्रदेश** ने प्रकाशित किये थे। श्रीमती सभा ने दो बार उक्त पुस्तक को नये ग्रेजुएटों में उपहार रूप से बंटवाने का प्रबन्ध किया था। पीछे दो संस्करण **मद्रास आर्य समाज** द्वारा प्रकाशित हुए। नये संस्करण की मांग रहती थी। मदरास आर्य समाज छपवाना चाहता था। पर मैंने गत वर्ष अपने सब पुस्तकों के छपाई व प्रकाशन का अधिकार **आर्य साहित्य मंडल** अजमेर को दे दिया है, इस लिये पूर्वोक्त ग्रन्थ का सातवां संस्करण उक्त मंडल द्वारा ही छप रहा है। आशा है शीघ्र प्रकाशित होगा। श्री मन्त्री **सार्वदेशिक सभा** की योरप के राष्ट्रदूतों द्वारा तथा अन्य प्रकार प्रकाशन के लिए अंगरेजी संस्करण की मांग सदा बनी रहती है। पुस्तक के हिन्दी भाषान्तर "धर्म का आदि स्रोत" के पहले दो संस्करण उत्तर प्रदेश की

आर्य प्रतिनिधि सभा ने प्रकाशितकिये थे। तीसरा 'श्री राजपाल एण्ड सन्स' नाम की प्रसिद्ध संस्था ने किया था। चौथा संस्करण भी गत वर्ष उनके द्वारा छप कर प्रकाशित हुआ।

मेरी लिखी अन्य पुस्तकों का कुछ विवरण अनु० १८ में आ चुका है और सब का संक्षिप्त वर्णन **परिशिष्ट** में दे दिया गया है। उन सबका प्रकाशन भविष्य में **आर्य साहित्य मंडल** अजमेर द्वारा ही होता रहेगा।

१६ खण्ड—समाज सुधार संबन्धी कुछ कार्य

अ० १२६—(१) अन्तर्जातीय विवाह—३० दिसम्बर १९५१ को जयपुर के एक्जीक्यूटिव इन्जीनियर श्री डा० ब्रह्मप्रताप भटनागर की बहन कुमारी कृष्णा M. B. B. S. का विवाह देहरादून निवासी रा० ब० उग्रसेनजी के सुपुत्र डा० कृष्णकुमार M. B. B. S. के साथ वैदिक रीति से हुआ। रा० ब० उग्रसेन देहरादून डी० ए० वी० कालेज के उपप्रधान और मेरे पुराने मित्र हैं। डा० भटनागर कायस्थ जाति के हैं। 'विवाह अन्तर्जातीय' होना था। दोनों पक्ष ने मेरी सहायता चाही। मैंने सहर्ष विवाह संस्कार कराया। पं० चन्द्रमणि शास्त्री मन्त्री आर्य समाज जयपुर ने संस्कार कराने में सहायता दी। विवाह के अन्त में मैंने जन्म गत जाति भेद की हानियां बतलाते हुए भाषण दिया।

(२) एक मुस्लिम लेडीडाक्टर की शुद्धि—१ जनवरी

सन् १८५२ को श्री मधुसूदन मित्थल चीफ इंजिनियर (नहर-विभाग) अपने २ या ३ मित्रों के साथ मेरे घर पर आये और यह प्रकट किया कि एक मुस्लिम महिला जो M. B. B. S. परीक्षा उत्तीर्ण है और लेडि हार्डिंग मेडिकल कालेज देहली में रेजीडैंट सर्जन का काम कर रही है, शुद्ध होकर आर्य (हिन्दू) होना चाहती है, और श्री मित्थलजी के पुत्र से विवाह करेंगी। मेरी सहायता चाही। मैंने शुद्धि और विवाह दोनों कार्य करना स्वीकार किया। ४ जनवरी सन् १९५२ को कुमारी **अनवर आरा** M. B. B. S व श्री अखिलेश्वर मित्थल, वधू व वर दोनों जयपुर पहुँच गये। ५ ता० शनिवार को आर्य समाज मन्दिर में ११ बजे दिन के समय 'शुद्धि का कार्य' प्रारंभ हुआ। आर्य समाज के सदस्यों के सिवाय श्री मित्थलजी के निमन्त्रित बहुत से उच्च अधिकारी वर्ग तथा नगर के अन्य प्रतिष्ठित लोग आगये थे। कुछ महिला भी उपस्थित थी। मैंने यथोचित रीति से शुद्धि का कार्य कराया और कुमारी अनवर आरा को जिन्होंने अपना नया नाम **श्रीमयी** रक्खा था, यज्ञोपवीत भी दिया, मेरा भाषण भी हुआ। श्रीमयी जी ने ५१) दान रूप से आर्य समाज जयपुर को दिया।

उसी दिन सायंकाल श्री मित्थलजी के घर पर उनके पुत्र के साथ श्रीमयीजी का 'विवाह संस्कार' हुआ। यह लिखना उचित होगा कि श्रीमयीजी के पिता खानबहादुर डा० एम. ए. खान F.R. S. E. आगरा मेडिकल स्कूल के प्रिंसिपल रहे थे। यह एक

आकस्मिक बात है कि जब मैं सन् १९१४-१९१५ में बुन्देलखण्ड की रियासतों में नहर विभाग के लिये कुछ जमीन की नाप व कीमत का तखमीना तय्यार कराने के लिये हमीरपुर जिले में L. A. O. के पद पर युक्त प्रान्त की सरकार की ओर से तईनात था तो स्वर्गीय डा०एस०ए० खान वहां सिविल सर्जन थे, और मेरा उनका वहां सहवास रहा। उनका कई वर्ष हुए देहावसान हो चुका। श्रीमयीजी की माता जीवित हैं और देहरादून में रहती हैं। उनकी एक बहन व एक भाई भी हैं,

विवाह संस्कार ७ बजे सायंकाल आरम्भ हुआ। पं० चन्द्रमणि शास्त्री ने आज के संस्कार में भी सहायता दी। नगर के प्रतिष्ठित गण्य मान्य लोग विशेषकर श्री मित्थलजी के निमंत्रण किये हुए उच्चवर्ग के सरकारी अधिकारी लोग अच्छी संख्या में थे। ९ बजे संस्कार समाप्त हुआ। १० बजे तक सहभोज हुआ। वर व वधू उसी रात की रेल से लखनऊ चले गये। इस संस्कार के सम्बन्ध में एक बात लिखने योग्य यह है कि मैंने **कन्यादान** नहीं कराया, कन्या के पिता का देहावसान हो चुका था। उसकी माता उपस्थित न थी, और विवाह के लिये उसकी अनुमति प्राप्त करनी भी असम्भव थी। इसके सिवाय संस्कार विधि में भी कन्यादान के नाम से कोई स्पष्ट विधान नहीं है और होना युक्त भी नहीं। गोदान, वस्त्र दान ठीक ही हैं। पर कन्या कोई संपत्ति Property की ऐसी वस्तु नहीं जो दान में दी जा सके। मेरी सम्मति में यह कन्यादान की रीति तब प्रचरित हुई जब कि वैदिक धर्म का ह्रास

होने से स्त्रियों की स्थिति समाज में गिर गई थी और ऐसे वचन बना कर स्मृतियों में डाले गये, कि स्त्री का पिता कुमारावस्था में उसकी रक्षा करता है, विवाह होने पर पति रक्षक है और वृद्धावस्था में पुत्र रक्षा करता है, परन्तु "न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति"—स्त्री को स्वतन्त्रता का अधिकार नहीं है। मैंने विवाह के अवसर पर इसी प्रकार अपने विचार प्रकट किये जिनको वर व वधू, उनके सम्बन्धी तथा उपस्थित जनता ने बहुत पसन्द किया। एक लेख भी मैंने इस विषय पर देहली के "सार्वदेशिक" पत्र में भेजा था। पं॰ धर्मदेव वि॰ वा॰ सम्पादक महाशय ने भी बहुत अंश में अपनी सहमति प्रकट की थी। यह प्रश्न मेरे निवेदन पर सार्वदेशिक 'धर्मार्य सभा' में भेजा गया था। उस सभा ने अपने १६ अप्रेल सन् १६५३ के अधिवेशन में जो निश्चय किया वह इस प्रकार है—

"विवाह संस्कार में कन्यादान वेद शास्त्रानुमोदित है किन्तु उसका केवल इतना ही तात्पर्य्य है कि कन्या का पिता वा संरक्षक उसके भरण पोषणादि का उत्तरदायित्व वर के हाथ में सौंपता है। वह अचेतन वस्तुओं की तरह का दान नहीं।"

(३) दो कन्याओं का उपनयन—२० जनवरी सन् ५३ को वसन्त पंचमी के दिवस पर श्री कन्हैयालाल शर्मा के निमन्त्रण पर उनकी २ कन्याओं को जिनका नाम इन्दिरा व पद्मा हैं और कालिज में शिक्षा पा रही हैं, मैंने उपनयन संस्कार कराया। श्री पं॰ चन्द्रमणि शास्त्री ने सहायता दी। आर्यसमाज के सिद्धान्तानुसार

कन्याओं का भी उपनयन होना चाहिये। पर बहुत कम आर्य समाजी इसका पालन करते हैं। इन कन्याओं की माता लखनऊ के प्रसिद्ध आर्य स्व० श्री रामचन्द्रजी की पुत्री है। उनको आर्य समाज से लग्न है। उनके उत्साह से कन्याओं का उपनयन हुआ।

(४) आगरे में आगरा कालिज की शतउत्तरी जयन्ती— सन् १६५१ के जनवरी मास में आगरा में आगरा कालिज की शतउत्तरी जयन्ती अर्थात् १२५ वर्ष की जुबिली मनाई जानी थी। माननीय श्री राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद जी ने उद्घाटन करना स्वीकार किया था। मैं आगरा कालिज का एक पुराना विद्यार्थी (ग्रेजुएट) हूँ। पुराने विद्यार्थी Old Graduates बुलाये गये थे। मैं भी निमन्त्रित हुआ था। मेरे मित्र श्री डा० निहालकरण सेठी M. A. D. Sc प्रिंसिपल की, जो कार्य मन्त्री थे इच्छा थी कि मेरा उस अवसर पर एक भाषण भी कराया जाय, जिसकी मैंने स्वीकृति दे दी थी। परन्तु मैं अजमेर से लौट कर १० जनवरी को रुग्ण हो गया और लगभग एक मास तक रुग्ण रहा। आगरा कालिज की जयन्ती २६ से ३० जनवरी तक मनाई गई। मेरा जाना वा भाग लेना सर्वथा असंभव था। आगरा कालिज मैगेजीन के जुबिली विशेषांक में पुराने विद्यार्थी होने के नाते से मेरा एक चित्र (फोटोग्राफ) संक्षिप्त जीवनी के साथ छापा गया था।

खण्ड १७—परोपकारिणी सभा के अधिवेशन

अ० १२७—परोपकारिणी सभा का अधिवेशन—

७ व ८ जनवरी १९५१ को परोपकारिणी सभा का अधिवेशन अजमेर में होना था। मेरे पुत्र डा० प्रकाश स्वरूपजी ने सर्दी अधिक होने के कारण मेरे स्वास्थ्य की दृष्टि से जाने की सलाह न दी। परन्तु श्रीमान् उम्मेदसिंहजी राजाधिराज शाहपुरा ने प्रधान पद से त्याग पत्र दे दिया था। उनका अनुरोध था कि मैं अवश्य सभा में आऊं। उनका मन्त्री श्री हरविलास सार्डाजी के साथ कुछ मनोमालिन्य था। उस परिस्थिति के कारण मैंने जाने का निश्चय किया। ५ ता० के प्रातःकाल की रेल से चलकर मैं दोपहर को अजमेर पहुँचा। रेल से सीधा सभा भवन में गया। ६ बजे तक सभा की मीटिंग हुई। वहां से अपने निवासस्थान पर गया। दूसरे दिन प्रातःकाल आर्य परिवार संघ का कुछ कार्य किया। ९ बजे से ५ बजे तक परोपकारिणी सभा की मीटिंग में भाग लिया। ९ ता० को अजमेर से चलकर दोपहर को जयपुर पहुँच गया। श्री राजाधिराज ने कृपा करके अपनी मोटरकार यात्रा के लिए देदी जिससे आराम मिला। पर १० ता० को जयपुर में ज्वर हो गया। पहले Influenza इंफ्लुएंजा का रूप था। पीछे डा० प्रकाश स्वरूपजी ने निमोनिया बतलाया। १० या १२ दिन तक

चलना फिरना बन्द रहा। ४ या ५ दिन तक कुछ बेहोशी रही। डा० प्रकाशजी ने दशा चिन्तनीय समझ कर मेरे भाई बालमुकुन्द को मेरठ व पुत्र जगदीश स्वरूप को सूचना देदी। २० ता० को भाई बालमुकुन्द और भाई प्यारेलालजी की विधवा यशोदेवीजी मेरठ से और जगदीश स्वरूप रुड़की से आगये। धीरे-धीरे आराम होने लगा, लगभग एक मास तक रुग्ण रहा,

अ० १२८—परोपकारिणी सभा का अधिवेशन १६५२ का—गत वर्ष २४ फरवरी १६५२ को परोपकारिणी सभा का अधिवेशन हुआ था। मैंने सभा में कई प्रस्ताव भेजे हुए थे जिनकी पुष्टि के लिए मेरा जाना उचित था। मुख्य विषय यह था कि कई सदस्यों के स्थान रिक्त थे उनकी पूर्ति होनी थी। मैंने एक स्थान पर डा० मंगलदेव शास्त्री की नियुक्ति का प्रस्ताव किया था। उक्त महोदय ने लगभग १३ वर्ष सुप्रसिद्ध गवर्नमेंट संस्कृत कालिज बनारस के प्रिंसिपल पद पर बड़ी योग्यता से कार्य किया और साथ ही लगभग १७ वर्ष तक मध्यमा शास्त्री आचार्य आदि परीक्षाओं के (जिनका मान भारतवर्ष भर में है) रजिष्ट्रारी का काम किया, और उन परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में अनेक आवश्यक महत्व-पूर्ण युक्त परिवर्तन व संशोधन कराये, जिनमें एक मुख्य यह था कि नवीन ग्रन्थों के सिवाय प्राचीन आर्यग्रन्थ भी परीक्षाओं में रक्खे जायें। डा० महोदय १६४६ में उन कामों से अव-

काश पा चुके थे। मेरी उनसे पुरानी मित्रता है। मेरी उनके लिए यह सलाह थी कि वे वैदिक साहित्य (ब्राह्मण, आरण्यक) आदि ग्रन्थों के सम्बन्ध में अनुसन्धान Research का कार्य परोपकारिणी सभा के सहयोग द्वारा करें जिसको उक्त महोदय ने पसन्द किया। २३ फरवरी १६५१ को डा० मंगलदेव शास्त्री जयपुर पहुँच गए। उनके साथ ऊपर लिखी योजना पर विचार विनिमय हुआ। २४ ता० को प्रातःकाल की रेलगाड़ी से हम दोनों ने यात्रा की और अजमेर पहुँचे। स्टेशन से सीधे सभा में गए जो श्री मन्त्री (हरविलास सार्डाजी) के मकान पर हो रही थी। मेरे प्रस्ताव पर डाक्टर महोदय सभा के सदस्य चुन लिए गए। मेरा दूसरा प्रस्ताव यह था कि ब्राह्मण, आरण्यक आदि प्राचीन ग्रन्थों के प्रकाशन व अनुसन्धान आदि कार्य की व्यवस्था करने के लिए डा० मंगलदेव शास्त्री, पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु तथा पं० भगवद्दत्त (रिसर्च स्कालर) की एक समिति बनाई जाय। यह भी स्वीकृत हुआ परन्तु पूर्वोक्त महत्वपूर्ण कार्य अभी तक आरम्भ नहीं हुआ जिसका कारण समिति के उक्त सदस्य सभा की पर्याप्त सहायता की कमी बतलाते हैं।

१८ खण्ड—समाज सेवा के कुछ अन्य कार्य

अ० १२६—राजस्थान आर्य सम्मेलन— १ से ५ सितंबर १६५१ तक राजस्थान आर्य सम्मेलन आर्य प्रतिनिधि

सभा की अध्यक्षता में जयपुर में हुआ। श्री पं० इन्द्रजी विद्या वाचस्पति मनोनीत सभापति थे, मैं स्वागत समिति का अध्यक्ष चुना गया था। श्री पं० विजयशंकर शास्त्री वैद्यजी स्वागत मन्त्री थे। १ सितम्बर प्रातःकाल श्री पं० इन्द्रजी प्रातःकाल की रेलगाड़ी से आगये। १२ बजे दोपहर से ३ बजे तक विषय निर्वाचन समिति की बैठक हुई। ४ बजे से सभापति महोदय का जलूस नगर में होकर गया। ७ बजे मण्डप में पहुँचा जो रामलीला के प्रसिद्ध और विस्तृत मैदान में बनाया गया था। इस के पश्चात् श्री उम्मेदसिंहजी राजाधिराज शाहपुरा ने सम्मेलन का उद्घाटन किया। मैंने स्वागताध्यक्ष का भाषण दिया, भाषण छपवा लिया गया था। परन्तु मैंने मौखिक भाषण ही किया। तब श्री पं० इन्द्रजी वि० वा० सभापतिजी का भाषण हुआ। दो, तीन व चार सितम्बर को कई प्रकार के सम्मेलन और विद्वानों के भाषण हुए, जो सब ही अच्छे थे। ३ सितम्बर को दलितोद्धार सम्मेलन के सभापति श्री अमृतलाल यादवजी का भाषण (जो उस समय राजस्थान सरकार के डि० मिनिस्टर थे), बहुत ही रोचक व हृदयस्पर्शी था। भाषण मौखिक ही हुआ था। ५ सितम्बर को राष्ट्रभाषा सम्मेलन होने के बाद स्वागत मन्त्री ने सब आये हुए अतिथियों उपदेशकों और उपस्थित सज्जनों को स्वागत समिति की ओर से धन्यवाद दिया। सम्मेलन सब प्रकार सफल रहा। उसकी विस्तृत रिपोर्ट मन्त्री आर्य प्रतिनिधि

सभा राजस्थान की ओर से आर्य मार्तण्ड में प्रकाशित हुई जो सभा का साप्ताहिक पत्र है।

अ० १३०—मेरठ में सार्वदेशिक आर्य महा सम्मेलन—२७ अक्टूबर से १ नवम्बर १९५१ तक मेरठ नगर में सार्वदेशिक आर्य महा सम्मेलन श्री विनायक राव बैरिस्टर व कृषिमन्त्री हैदराबाद के सभापतित्व में बड़े समारोह से हुआ। मेरे पास भी निमन्त्रण पत्र आया था। मेरठ मेरा जन्मस्थान है, मैं अबतक मेरठ आर्य समाज का ही सभासद हूँ। मेरी तीव्र इच्छा थी कि महा सम्मेलन में उपस्थित होकर भाग ले सकूँ। परन्तु स्वास्थ्य ठीक नहीं था कि ऐसी यात्रा कर सकूं। लाचारी के कारण नहीं गया। कांठ [जिला मुरादाबाद] आर्य समाज ने सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा में एक प्रस्ताव भेजा था कि मेरी सेवाओं के उपलक्ष्य में वहां सम्मेलन के अवसर पर मुझको अभिनन्दन पत्र दिया जाय। सभा ने पत्र की नकल मेरे पास भेजी। मैंने अपने ३१-८-५२ के पत्र द्वारा यह उत्तर लिखा कि कांठ आर्य समाज को उनके सद्भाव के लिए मेरी ओर से धन्यवाद देकर प्रस्ताव अस्वीकार किया जाय। ९-९-५२ की सार्वदेशिक अन्तरंग सभा में इस प्रस्ताव पर विचार होना था।

अ० १३१—जोबनेर आर्यसमाज का उत्सव—जोबनेर आर्य समाज के प्रधान श्री ठाकुर नरेन्द्रसिंह जी हैं, जो रिया-

सत के एक प्रतिष्ठित ताजीमी सरदार हैं। वे पहले कई वर्ष तक राज्य के शिक्षा व चिकित्सा मंत्री रहे। अब भी महाराजा साहब की निजी संपत्ति के प्रबन्ध का कुछ कार्य करते हैं। मेरा श्री ठाकुर साहब के पिता स्व० ठाकुर करणसिंह जी से विशेष परिचय था, जिसका संक्षेप से वर्णन करना आवश्यक है। उक्त श्रीमान् आर्य समाज और ऋषि दयानन्द के सच्चे और दृढ भक्त थे। जब मैं सन १८९३ ई० में आगरा आर्य समाज का मन्त्री था और एम. ए. क्लास का परीक्षार्थी था तो स्व० ठाकुर करणसिंहजी की इच्छा जोबनेर में एक दयानन्द स्कूल स्थापित करने की हुई। इसके संबंध में मेरे साथ कुछ पत्र व्यवहार हुआ। श्रीमान् ठाकुर साहब आगरा भी गये थे। मुझसे भेंट हुई और उनकी इच्छानुसार मैंने जोबनेर आने की प्रतिज्ञा की। लगभग जून मास में एम. ए. की परीक्षा दे चुकने पर मैं जोबनेर गया। स्व० ठाकुर साहब ने अपना सब जंगल जिसकी आयको वह प्रस्तुत स्कूल को अर्पण करना चाहते थे मुझको दिखलाया। स्कूल भवन के लिये स्थान भी देखा गया, और स्कीम पर विचारहुआ। वास्तवमें स्वर्गीय ठाकुर साहब को स्कूल स्थापित करने की सच्ची लगन थी। मैंने आगरा लौटने पर ठाकुर साहब की इच्छा के अनुसार एक या दो आर्य समाजी अध्यापक भेज दिये, और शीघ्र ही स्कूल आरंभ होगया। मेरे जोबनेर जाने के १ या २ मास पीछे श्री ठाकुर नरेन्द्रसिंह जी का जन्म हुआ। ठाकुर साहब इस बात को बड़ी भावुकता के साथ इन शब्दों में कहा करते हैं कि उनके पूज्य पिताजी के दो

पुत्र हुए, एक वे, और दूसरा वह स्कूल। निःसन्देह स्व० ठाकुर करणसिंह जी ने जीवन से भी प्यारे अपने स्कूल को पुत्र के समान पाला। वह शीघ्र ही अच्छा हाई स्कूल हो गया। श्री ठा० नरेन्द्रसिंह जी ने उस स्कूल को बढ़ा कर एक बहुत अच्छा कालिज बना दिया जिसमें अन्य विषयों के सिवाय **कृषि विद्या** Agriculture की विशेष रूप से शिक्षा होती है। इसीलिये वह Agricultural **कृषि कालेज** कहलाता है,पूरा नाम S. K N. R. College है। राजस्थान में उससे बड़ा कोई दूसरा **कृषि विद्या** का कालेज नहीं है, उक्त श्रीमान ने अपनी लगभग सारी सम्पत्ति ट्रस्ट द्वारा इस कालेज के अर्पण करदी है।

मेरे जयपुर आने पर श्रीमान ठा० नरेन्द्रसिंहजी ने कई बार यह इच्छा प्रकट की कि मैं जोबनेर जाकर उनके कालेज को देखूं। पुराने संबंध और ऊपर लिखे कारणों से मेरी भी यह उत्कट् इच्छा थी। २४ सितम्बर १६५२ को **जोबनेर आर्यसमाज** का उत्सव होने को था। मैंने इस सुअवसर का हृदय से स्वागत किया। २० तारीख को मैं रेल से जोबनेर रोड स्टेशन तक गया। वहां से नगर ८ मील है। श्री ठाकुर साहब की **जीपकार** तैयार मिली, जोबनेर पहुँचने पर श्री ठाकुर साहब ने जैसा स्वागत आतिथ्य किया उसका वर्णन नहीं हो सकता। भोजन करने के बाद मैंने पहले स्कूल व कालेज तथा छात्रावास देखे। पत्थर की चिनाई के विशाल भवन बन गये हैं, कालेज के ही एक हाल में आर्य समाज का उत्सव मनाया गया। मेरा भाषण हुआ जिसमें

मैंने स्व०श्री ठाकुर करणसिंह जी के विद्या प्रेम व दान शीलता के लिये श्रद्धांजलि अर्पण की। सायंकाल की रेल द्वारा लौट कर मैं जयपुर आगया।

१३२–कतिपय अन्य स्थानों में व्याख्यान—अस्वस्थता के कारण मैं आर्य समाज जयपुर के साधारण साप्ताहिक सत्संगों में नही जा सकता था। कभी कभी अन्य सभाओं में जाने और व्याख्यान देने का काम पड़ता था, उनमें से कुछ का उल्लेख किया जाता है।

[क] महाराजा कालेज में **एक हिन्दू छात्र संघ है** Hindu Students Federation। उसकी ओर से वर्ष में एक या दो बार मानिक चौक में, जो जयपुर नगर में सबसे बड़ा चौक है, और जहां सरकार वा राजनैतिक दलों की ओर से समय समय पर सार्वजनिक मीटिंग होती रहती है, हिन्दू महात्माओं वा नेताओं की स्मृति में व्याख्यानों का प्रबन्ध किया जाता था। उदाहरणार्थ २२ फरवरी १६५२ को **श्री परमहंस रामकृष्ण** की जीवनी पर भाषण हुए थे,मुझको सभापति का कार्य सुपुर्द किया गया था, और विद्यार्थीयों के सिवाय नगर के कुछ अन्य शिक्षित सज्जनों के भाषण हुए थे। इसी प्रकार **राणा प्रताप, शिवाजी,** के दिवस मनाये गये थे,और **वीर सावरकार की जीवनी** पर भी एक बार भाषण हुआ, सभापति का कार्य मैं ने किया था।

(ख) जयपुर में **रोटरी क्लब**—(Rotary Club)—यह एक प्रतिष्ठित संस्था है जिसकी शाखाऐं भारत के सब बड़े

नगरों में हैं, और अन्य देशों में भी हैं। धार्मिक वा राजनैतिक विचारों का कोई बन्धन नहीं, एक अन्तर राष्ट्रीय International संस्था है। उद्देश्य सांस्कृतिक व सामाजिक सुधार है। बहुधा हर मीटिंग में किसी सदस्य का (जो Rotarian कहलाते है), अथवा किसी अन्य विद्वान् का जो निमंत्रित हो भाषण और कुछ वाद विवाद होता है। जनवरी १९५१ में श्री किशन पुरी जी ने जो इस समय राजस्थान की बोर्ड आफ रेवेन्यू के चेयर मैन हैं, और उस समय जयपुर के कमिश्नर थे मुझ से प्रस्ताव किया कि मेरा जयपुर रोटरी क्लब में एक भाषण हो। वे स्वयं क्लब के एक प्रतिष्ठित सदस्य थे। मैंने सहर्ष स्वीकार किया। भाषण का विषय श्री पुरी जी महोदय की ही अनुमति से Essence Of Religion अर्थात "धर्म का मूल तत्व" रक्खा गया। भाषण अंगरेजी में ही होना था, मैंने लिख कर तय्यार कर लिया, परन्तु बोलते समय मैं ने मौखिक ही भाषण दिया जैसा मुझको अभ्यास है, १ फरवरी सन् १९५२ को मीटिंग हुई। श्री डा० हे लिग महोदय ने जो जयपुर में सब से बड़े और सुविख्यात डाक्टर हैं मेरा बहुत से सदस्यों से परिचय कराया, लगभग १ या पौन घंटे में भाषण समाप्त हुआ। फिर आधा घंटे तक कुछ सदस्यों ने प्रश्न किये और मैं ने उत्तर दिये, श्रोताओं ने भाषण की प्रशंसा की।

(ग) १ से ४ सितम्बर १९५२ तक जयपुर के एक आर्य्य सज्जन श्री बुद्धमल तलेजा जी ने फतह टीबा की नई कौलोनी

में एक यज्ञ कराया जिसके अधिष्ठाता पंजाब के सुप्रसिद्ध महात्मा टेकचन्द (उपनाम "प्रभुआश्रित" थे)। पहले दिन व अन्त के दिन पूर्णाहुति के समय मैं भी उपस्थित था। यज्ञ का सब कार्य बड़ी श्रद्धा पूर्वक किया गया जैसा श्री महात्मा जी के यज्ञों में सदा ही होता है। पूर्णाहुति के पीछे श्री म० टेकचन्द जी का उपदेश हुआ जो बहुत प्रभाव शाली था। इन की इच्छा के अनुसार मैं ने भी यज्ञ व अग्निहोत्र विषय पर कुछ भाषण किया जिसका सारांश उस लेख में भी दिया गया था जो मैं ने इस यज्ञ के सम्बन्ध में आर्य मार्तण्ड अजमेर को भेजा था।

(च) ५ दिसम्बर १९५० को पांडीचेरी योगाश्रम के सुप्रसिद्ध संस्थापक श्री अरविन्द घोष का प्राणान्त हो गया। पत्रों द्वारा सूचना मिली। श्री अरविन्द केवल भारत वर्ष में नहीं किन्तु सारे संसार में सब से बड़े योगी थे। ऋषि दयानन्द की वेद भाष्य शैली का बहुत मान करते थे, इस लिये मैं ने १० दिसम्बर को आर्य समाज मन्दिर में एक विशेष मीटिंग द्वारा श्री अर विन्द जी की योग साधना व उनके तत्व ज्ञान का वर्णन किया और जयपुर नगर की ओर से उनके प्रति श्रद्धांजलि का प्रस्ताव रक्खा, श्री विष्णुदत्त शर्मा डिप्टी सेक्रेटरी शिक्षा विभाग ने उसका समर्थन किया व स्वामी नृसिंह देव जी ने जो राजस्थान आर्य प्रतिनिधि सभा के उपप्रधान थे पुष्टि की।

टिहरी आर्य समाज के प्रवेश का प्रश्न—मैं सन् १६२२ से १६३६ तक १७॥ वर्ष टिहरी में रहा। जब मै वहाँ पहुँचा वहां कोई आर्य समाज न था न कोई आर्य समाजी थे। २ या ३ सज्जन ऐसे थे जिन को कुछ समाज की शिक्षा की जानकारो और उस से सहानुभूति थी। कुछ समय पीछे एक पोस्ट मास्टर बाहर से ऐसे आये जो पक्के आर्य्य थे। वे डाकखाने के ऊपर के भाग में रहते थे। उसी स्थान पर आर्य समाज का कार्य्य आरभ किया गया। पीछे कोतवाली के तप्पड़ में जहां चौड़ा मैदान है भूमि खरीद कर चन्दा किया गया और ईश्वर की कृपा से मन्दिर के योग्य एक छोटा सा भवन बन गया, और उसी में प्रति रविवार को सत्संग, हवन व भजन होने लगे। सभासदों की संख्या ६ या १० से अधिक नहीं हुई। सन् १६३६ में मैं ने अपनी दान निधि में से दो हजार रुपये ३) सैकड़ा व्याज पर जमा कर के सार्व देशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के नाम एक ट्रस्ट Trust इस उद्देश्य से कर दिया कि उसका ६० रु० वार्षिक सूद टिहरी समाज को दिया जाय। उस से समाज मन्दिर की साधारण मरम्मत होने लगी। दरी आदि कुछ आवश्यक सामान भी हो गया।

टिहरी आर्य समाज मन्दिर—की रजिस्ट्री नहीं हुई। मेरी यह इच्छा थी कि समाज का संबंध आर्य प्रतिनिधि सभा युक्त प्रान्त से हो जावे जिससे नियमों के अनुसार मन्दिर सभा की

संपत्ति हो जाय। टिहरी दरबार की यह दृढ़ नीति थी कि राज्य से बाहर की किसी संस्था का राज्य के भीतर स्थित किसी संपत्ति पर स्वत्व वा अधिकार न हो। सन् १९४८ में राज्यों का एकीकरण हो जाने पर यह बाधा नहीं रही। मैं तभी से आर्य प्रतिनिधि सभा युक्त प्रदेश के मंत्री जी से सानुरोध निवेदन करता रहता हूँ कि आर्य समाज टिहरी का शीघ्रातिशीघ्र सभा से संबंध करा लेंवे जिससे मन्दिर सुरक्षित हो जाय। तब तक वह अरक्षित ही है। मैंने हाल ही में ताकीद की थी। उत्तर में मन्त्री जी ने लिखा कि उपसभा बिजनौर व गढवाल के मन्त्री जी को याद दिलाया जा रहा है। आशा है यह आवश्यक कार्य होगया होगा अथवा शीघ्र हो जायगा।

आ. १३४—मेरा दान का खाता और टिहरी में एक विचित्र घटना—मैं अपनी नौकरी के आरंभ से अपनी आयका दशांश दान में देता हूँ, जैसा शास्त्रों का आदेश है, और दान के आय व व्यय का अलग हिसाब रखता हूँ। टिहरी जाने पर मुझको पहले ८००) मा० वेतन मिलता था। तब मैं ८०) मा० दान देता था। परन्तु १०००) मा० वेतन होने पर २००) मा० देने लगा। सन् १९३५ में एक ऐसी विचित्र घटना हुई जिससे मैं उसके बाद आधा वेतन ५००) मा० दान रूप देने लगा। उसका संक्षिप्त वर्णन करना आवश्यक है। १० नवम्बर १९३५ को मैं महाराजा साहब का एक जरूरी बुलावा आने पर टिहरी से घोडे पर नरेन्द्र नगर जा रहा था जहां

महाराजा साहब का निवास था, घोंडा तेज चलता था। नरेन्द्र नगर से १२ मील इस ओर एक स्थान पर विकट मार्ग था। दो बजे दोपहर का समय था। घोड़े को सड़क के किनारे के के पास चलने की कुछ आदत थी, सडक ८ फुट चौड़ी थी। उसके एक तर्फ ऊंचा व सीधा पहाड़ था। दूसरी तर्फ गहरा खड्डा था। उस विकट स्थान पर उसका पांव फिसल गया। मुझको यह अभ्यास था कि रकाव में पांव का केवल अगला भाग वा पजा रहे, जिससे ऐसी घटना आने पर घोड़े से कूद कर बच जाना सुगम हो। मैंने ऐसा ही किया और शरीर को सड़क की ओर झुकाया। मैं सड़क पर गिरकर सड़क पर खड़ा हो गया और मुझको कुछ भी चोट नहीं आई। सारी घटना विचित्र ही थी। मुझको ऐसा भान हुआ मानो किसी ने मुझको घोड़े की पीठ से उठाकर सड़क पर खडा कर दिया। घोड़ा सड़क के नीचे जो विकट घाटी थी उसमें गिरा और लगभग १०० या १५० गज नीचे जाकर उसका वदन ठहरा। बीच में कोई वृक्ष या झाड़ी या अन्य रुकावट की कोई वस्तु नहीं थी। घोड़ा वहीं मर गया। उसका सिर टांग आदि व जीन भी टूट गये। नीचे स्थान ऐसा था जहां खेत आदि भी न थे। यदि मैं भी गिरता तो मृत्यु होनी तो निश्चित ही थी पर दो या ४ दिन तक किसी को इस घटना की खवर भी न होती। क्योंकि इस घटनाके समय उस स्थानपर या उसके पास कोई मनुष्य नहीं था। मेरे चपरासी साईस, सरिश्तेदार आदि

सब बहुत पीछे रह गये थे, कुछ समय के बाद वहां पहुँचे। हाल सुनकर हैरान हो गये। मैं सरिश्तेदार का घोड़ा लेकर सीधा नरेन्द्र नगर को चल दिया, क्योंकि आवश्यक कार्य था। लगभग ६ बजे सायंकाल नरेन्द्र नगर पहुँच गया। श्री पं० चक्रधर जुयाल दीवान साहब मिले। सुन कर बड़ा आश्चर्य करने लगे। मैंने अपने निवास स्थान पर पहुँच कर ईश्वर को धन्यवाद दिया। भोजन करने के बाद **लगभग सारी रात बड़ी भक्ति की भावना से मैं भजन गाता रहा।** प्रातः काल महाराजा साहब को सूचना दी। उनको भी आश्चर्य हुआ।

शायद इस घटना की खबर किसी ने किसी समाचार पत्र को भेज दी थी। मेरे पास **अनेक मित्रों के सहानुभूति के पत्र आये।** मैंने इस घटना का संक्षिप्त वर्णन एक निजी पत्र में स्वर्गीय श्री नारायण स्वामी को लिखा, क्योंकि उनके आश्रम में मेरी व भाई प्यारेलाल जी की संयुक्त कुटि बन चुकी थी। स्वामी जी ने उत्तर में मुझको लिखा कि **यह आपका नया जन्म हुआ,** इसलिये आपको शेष जीवन ईश्वर की देन समझनी चाहिये, और **अपना आधा समय धार्मिक कार्यों में लगाना चाहिये।** मैंने उत्तर में निवेदन किया कि जब तक मैं टिहरी राज्य की सेवा में हूं अपने समय पर मेरा पूरा अधिकार नहीं, परन्तु मैं उस घटना के दिन से अपना आधा वेतन धर्मार्थ देगा। मेरा दान खाते के नवम्बर १९३५ मास के हिसाब के

पृष्ठ पर इस प्रकार का नोट लिखा हुआ है, और सं० १९९२ के मार्गशीर्ष मास अथवा सन् १९३५ के १० नवम्बर से मैंने ५००) मासिक दान में देना आरम्भ कर दिया, जो टिहरी से अवकाश प्राप्त करने की तारीख अर्थात् कार्त्तिक सन् १९९६ तक देता रहा।

इस दान की आय का किस प्रकार उपयोग होता था वह मेरे दान खाते से स्पष्ट है जिसमें हर एक आय और हर एक व्यय लिखा है, और मासिक तथा वार्षिक हिसाब निकाला हुआ है। इस घटना से पहले भी मैं २००) मासिक जो दान देता था लगभग सब धमार्थ कार्यों में व्यय होजाता था। मैं विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियों के रूप में अधिक व्यय करता था। सं० १९८५ में मैंने २०००)देकर उसके व्याजसे एक रामदास छात्रवृत्ति अपने पिताजी के नाम से दयानन्द ऐं० वैदिक कालिज कानपुर को दी थी। २०००) के व्याज की "सुखदेवी छात्रवृत्ति" माता के नाम से और १०००) की सरस्वती छात्रवृत्ति अपनी पुत्री स्व० सरस्वती के नाम से आर्य प्रतिनिधि सभा यु० प्र०को दी जो अब तक चालू हैं। मैंने टिहरी में दीन छात्र सहाय सभा नयत की थी जिसका मैं अध्यक्ष था, कुछ अन्य सज्जन भी चन्दा देते थे। अधिकांश मेरा ही दान था, प्रताप हाईस्कूलके हेडमास्टर व संस्कृत पाठशाला के मुख्य अध्यापक की सहायता से टिहरी के दीन और योग्य सुपात्र छात्रों को छात्रवृत्ति आदि दी जाती थी। मेरे टिहरी छोड़ने के बाद भी कुछ वर्षों तक वह सभा चलती रही फिर बन्द

हो गई। सार्वदेशिक सभा व आर्य प्रतिनिधि सभाके विभिन्न फंडों में भी दान देता रहता था।

आर्य समाज के सिद्धान्तों का प्रचार करने की टिहरी दरबार से उस समय की प्रणाली के अनुकूल बिलकुल आज्ञा नहीं थी। मैंने अपने दान की निधि से एक योग्य आर्य पंडित रक्खा था जो आयुर्वेद की शिक्षा पा चुका था और वैद्यक का काम कर सकता था, और आर्य समाजी होने से कुछ आर्य धर्म का प्रचार भी कर सकता था। वह ग्रामों में घूमकर रोगियों को देखता था उनको बिना मूल्य दवा देता था और यथावसर लोगों को कुछ उपदेश भी कर देता था। इस प्रकार 'एका क्रिया द्व्यर्थकारी प्रसिद्धा' की कहावत चरितार्थ हो जाती थी। यह कार्य टिहरी में कई वर्ष तक जारी रहा।

---

२० खण्ड—जयपुर के दो कार्य।

अ० १३६—सन् १९५१ की मनुष्य संख्या में कार्य— (१) ब्रिटिश शासन के समय में हर दसवें वर्ष देश के सब मनुष्यों की संख्या होने की प्रणाली थी जो **मर्दमशुमारी** कहलाती थी। उसमें हर मनुष्य का नाम, उम्र जाति व धर्म आदि लिखे जाते थे। अन्त में देशभर की एक विस्तृत रिपोर्ट छपती थी। सन् १९४१ की जब मर्दमशुमारी होने को थी कुछ सुधारक विचार के समूहों ने यह चाहा कि लोगों की **जन्म जाति** न लिखी जाय। उनका सुझाव स्वीकार नहीं हुआ। सन् १९५१ की मर्दुमशुमारी

से पहले **स्वराज्य** की स्थापना हो गई थी। उसमें भारत सरकार ने यह निश्चय किया कि सिवाय **घोषित जाति व घोषित वर्गों** Scheduled Castes & Tribes के और किसी हिन्दू की जाति न पूछी जाय। इसका एक विशेष कारण था जिसका उल्लेख करना आवश्यक है।

पाकिस्तान की मांग—मुसलमानों की कई वर्ष से मांग थी कि जिन प्रान्तों में उनकी सख्या अधिक है वे शेष भारत से अलग करके उनके लिये **पाकिस्तान** बनाया जाय, शेष भाग **हिन्दुस्तान** में रहे। महात्मा गांधी पं० जवाहरलाल आदि सब हिन्दू नेता इस देश विभाजन के विरुद्ध ही थे। परन्तु **श्री जिन्ना के** नेतृत्व में मुसलमान विभाजन के प्रश्न पर अड़े रहे। ६ अप्रेल सन् १९४६ को देहली में Muslim League Legislater Convenion **मुसलिम लीग के धारा सभाओं के सदस्यों की एक सभा** हुई जिसमें नीचे लिखा **रेज़ोल्यूशन** स्वीकार किया गया—

"The Hindu Dharma has fostered and maintained for thousands of years a rigid **Caste system** resulting in the degradation of sixty millions of human beings to the positions of **untouchables**, creation of unnatural barriers between man and man, and the super imposition of social and economical inequalities on a large body of people of this country, and which

threatens to reduce Muslims, Christians, and other minorities to the status of irredeemable helots socially and economically."

(अर्थ) "हिन्दू धर्म ने हजारों वर्षों से एक ऐसी कट्टर जातिभेद प्रथा को पाल रक्खा है जिसके परिणामस्वरूप ६ करोड़ मनुष्य पतित होकर अछूत के दर्जे को पहुँच गये, मनुष्यों के बीच में अस्वाभाविक दीवारें पैदा करदी गईं, देश के बहुत बड़ी संख्या के लोगों पर सामाजिक और आर्थिक असमानताऐं लादी गईं और जिससे भय है कि मुसलिम ईसाई व अन्य अल्प संख्यक जातियां सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से ऐसी दासत्व की दशा में गिर जावेंगी जिससे उनका उद्धार होना असम्भव होगा।"

यह था वह शस्त्र जिसके आधार पर मुसलिम लीग ने **देश के विभाजन** की मांग को रक्खा था। यह हिन्दुओं के लिये और कांग्रेस के लिये भी (जिसके अधिकांश सदस्य हिन्दू थे), भारी चुनौती थी, ऐसा चुनौती थी जिसको वे भुला नहीं सकते थे, कांग्रेस ने और हिन्दू शिक्षित जनता ने इसका उत्तर वही दिया जो देना आवश्यक था। **भारत शासन के नये संविधान** की धारा १७ के द्वारा अस्पृश्यता स्पष्ट शब्दों में वर्जित की गई और उसका किसी रूप में पालन करना दण्डनीय ठहराया गया। धारा १५ व १६ के द्वारा **शूद्र व नीच जाति के लोगों के सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक अधिकार** रक्षित किये गये, पाठशालाओं व स्कूलों

में विद्यार्थियों के प्रवेश करने में तथा सरकारी नौकरियों पर नियुक्त करने में **जातिभेद** का बिलकुल विचार न करने के आदेश जारी किये गये। यह सब कुछ सन् १९४८ व १९४९ में हो गया।

नई मर्दुमशुमारी ९ फरवरी से १ मार्च १९५१ तक होनी थी। उसके लिये सरकार से आज्ञा हो गई कि सिवाय घोषित जाति Scheduled Castes, व घोषित वर्गों Scheduled Trilees के जिनकी **जाति** का लिखना उन के विशेष राजनैतिक अधिकारों की रक्षा के लिए आवश्यक था), शेष हिन्दुओं से मर्दुमशुमारी के समय **जाति न पूछी जाय और न लिखी जाय**। यह आर्य समाज तथा अन्य समाज सुधारकों की भारी विजय थी। मैंने **"जातिभेद निवारक आर्य परिवार संघ"** की ओर से एक लेख संघ के पत्र में प्रकाशित किया तथा अन्य पत्रों में भी इस उद्देश्य से लेख प्रकाशित किये कि इस सम्बन्ध में आर्यों का और संघ के सदस्यों का उचित मार्ग प्रदर्शन हो।

इस बात का निश्चय करने के लिए कि केन्द्रीय सरकार से जो आज्ञायें दी गई हैं, मर्दुमशुमारी विभाग के साधारण कर्मचारी उचित रीति से पालन करते हैं या नहीं मैं ६ अक्तूबर १९५० को राजस्थान के सेन्सस सुपरिंटेंडेंट श्री यमुनालाल वशोरा जी से जयपुर के दफ्तर में मिला और वार्तालाप किया। उस समय तक जो **वक्तव्य** Bulletins **सेन्सस** विभाग की ओर से छपे थे उनकी एक एक नकल देखी।

७-८ अक्तूबर १९५० को सेन्सस कमिश्नर श्री Shri Gopalan गोपालनजी भी जयपुर आनेवाले थे। मैंने पहले से पत्र लिखकर मिलने का समय मांगा था। ३ बजे दोपहर का समय दिया गया। मैं नियत समय पर उनसे मिला, अपनी लिखी **जातिभेद** की एक प्रति दी। उन्होंने अंगरेजी संस्करण Caste System की एक प्रति मांगी। परन्तु मेरे पास न थी, वह कुछ समय से अप्राप्त हैं, अब आर्य साहित्य मण्डल अजमेर द्वारा छप रही हैं। **सेन्सस** के छपे हुए वक्तव्यों में कई बातें ऐसी थीं जिनके समझने में भूल व भ्रम हो सकता था। मैंने उन विषयों पर श्री यमुनालालजी से २० अक्टूबर १९५० को जब वे दोबारा जयपुर आये वार्तालाप किया, ८ अक्तूबर ५० को जयपुर में Census Commissioner सैंसस कमिश्नर साहब की उपस्थिति में टौनहाल में एक सार्वजनिक सभा हुई, जिसमें मर्दु मशुमारी के नियम समझाये गए। उसमें मैं भी गया और भाषण किया, जिसमें ऊपर लिखी बातों पर आवश्यक प्रकाश डाला। श्री **सुपरिंटेंडेंट** साहब के सुझाव पर मैंने राजस्थान आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान महोदय को लिख दिया था कि उनके उपदेशक व प्रचारक उक्त महोदय से अवसर होने पर मिलते रहें। **मर्दु मशुमारी** का यह भारी काम ईश्वर की कृपा से ठीक ही हो गया। आर्यों को अलग लिखने के आदेश सब प्रान्तों में जारी हो गये थे। हर प्रांत में तथा सारे भारतवर्ष में आर्यों की कितनी

संख्या पाई गई यह ज्ञात नहीं हुआ। मैंने सार्वदशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री महोदय को लिखा था कि वे अधिकारी वर्ग से प्रांत वार संख्या तथा देश भर की संख्या, यदि प्राप्त हो सके तो प्रकाशित कर देंवे।

(९) **जयपुर में विधान सभा का निर्वाचन**—४ जनवरी १९५२ को जयपुर नगर में **पार्लीयामेंट** तथा **प्रान्तीय विधान सभा** के मेम्बरों का चुनाव हुआ। लगभग उसी समय भारत के सभी स्थानों में पूर्वोक्त चुनाव हुए। यह बड़ा भारी कार्य था, भारतीय संसद था, पार्लियामेंट के ४८९ व प्रान्तीय समाओं के ३०००, लगभग **३५००** **मेम्बरों** का चुनाव होना था। मतदाताओं की संख्या लगभग १७॥ करोड़ थी, क्योंकि नाबालिग बालकों को छोड़कर शेष सब पुरुष व स्त्रियों को मत देने का अधिकार था। इनमें पढ़े लिखे १० प्रतिशत से अधिक न थे। विदेशी लोग जिनके देश में शिक्षा की ऐसी कमी नहीं आश्चर्य करते थे कि ऐसी अवस्था में यह चुनाव कैसे सफल हो सकेगा। हमारे देश के नेताओं को भी भारी सन्देह था। परन्तु ईश्वर की कृपा और महात्मा गांधी के अशीर्वाद से सारे भारत में सफलतापूर्वक चुनाव होगया, कहीं भी विघ्न या बाधा नहीं हुई। ऐसे महत्वपूर्ण कार्य में जिसको भाग लेना हो उसको बड़ी उत्सुकता रहती है। मैं आशा करता था कि नियत तारीख से कुछ दिन पहले सूचना मिलेगी, पर केवल दो दिन दिन पहले यह सूचना मिली कि मत (वोट) देने वालों की सूची जयपुर कलक्टर के दफ्तर में रख दी गई

हैं। मालूम हुआ है कि उसमें मेरा नाम ही नहीं। कारण यह था कि अधिकारियों ने नई सूची न बना कर उसी सूची से काम लिया जो कुछ मास पहले जयपुर म्युनिसिपल बोर्ड के चुनाव के लिये तय्यार की गई थी। यह भी संभव न था कि भूल का संशोधन कराया जा सके। बहुत निराशा हुई, पर लाचारी थी, तो भी किस तरह काम होता है उसको देखने की इच्छा अवश्य थी। नियत तारीख ४ जनवरी ५१ को लगभग १० बजे दिन को जौहरी बाजार और उसके पास के स्थानों में जाकर देखा। प्रबन्ध अच्छा था। जो उम्मीदवार जिस दल (पार्टी) का प्रतिनिधि हो उसकी कार्रवाई या कोशिश में कोई दूसरा बाधा डालने वाला न था। वोट लिखने वाले कर्मचारी सब समझदार थे। पर यह जान कर आश्चर्य और खेद हुआ कि सैंकड़ों पुरुष व हजारों स्त्रियां वोट देने से वंचित रह गईं। इसका कारण यह था कि स्त्रियों में से बहुत कम स्त्रियों के उनके नाम दर्ज थे। शेष के नाम इस प्रकार दर्ज थे— "अमुक की स्त्री" "अमुक की बहन", "अमुक की भौजाई" इत्यादि। ऐसी स्त्रियों में भी बहुत सी वोट देने के लिए नियत स्थान पर पहुँची। परन्तु अधिकारियों ने उनको लौटा दिया और उनके वोट नहीं लिये। क्योंकि नियम यह था कि जिसका अपना असली नाम दर्ज हो वही वोट दे सकता था। मेरी पुत्रवधू (श्री चन्द्रमुखी) ने जो जयपुर नगर में रहती थी मुझे बतलाया कि वह स्वयं भी वोट नहीं दे सकी और उसकी जानकारी की पचासों स्त्रियां (चाहे

शिक्षित हो या अशिक्षित) जो वोट देना चाहती थी, नहीं जा सकी। जिन कर्मचारियों ने मतदाताओं Voters Lists की सूचियां तय्यार करी या कराईं वे अवश्य जान सकते थे कि मतदाता का अपना **असली नाम** लिखना चाहिये। संभव है कि कहीं अन्य स्थानों में भी स्त्री मतदाताओं के नाम दर्ज करने में ऐसी भूल हुई हों। परन्तु जयपुर में लगभग ६० या ७० प्रतिशत तक स्त्रियां इस अनियमता के कारण वोट देने के अधिकार से वंचित हो गईं। आशा है कि आगे के लिए कर्मचारी लोग इस अनुभव से लाभ उठा कर भविष्य में ऐसी अनियमता न होने देंगे।

---

२१ खण्ड—सौर पंचाग का संशोधन

अ० १३७—सौर पंचांग संशोधन—काल की गणना के लिए हर सभ्य देश में कोई **पंचांग** होता है, हमारे देश में दो प्रकार के **पंचांग** हीं, एक सौर Salar और दूसरा Luner **सौर पंचांग** ३६५।१४ दिन का है जिसमें १२ मास हैं। हर मास एक संक्रांति से आरम्भ होता है। हर चौथे वर्ष में एक दिन अधिक होता है, जैसाकि हर चौथे अंगरेजी वर्ष में फरवरी २८ के स्थान में २९ दिन का होता है। इस प्रकार हमारा सौर वर्ष अंगरेजी वर्ष के साथ चलता है और हर मास की संक्रांति अंगरेजी १३ या १४ तारीख को होती है।

चान्द्र वर्ष लगभग ३५५ दिन का होता है। क्योंकि चान्द्र मास में २६॥ दिन होते हैं, अर्थात् जितने समय में चन्द्रमा पृथिवी की पूरी परिक्रमा कर लेता है, परन्तु हर तीसरे चान्द वर्ष में एक मास जोड़ा जाता है जिसको **अधिकमास** कहते हैं। इस प्रकार हर चान्द्रवर्ष में जो १० दिन की कमी होती है वह पूरी हो जाती है और वह सौर वर्ष के साथ साथ चलता है। यदि ऐसा न होता तो हमारे त्यौहारों व पर्वों का जो अधिकांश में चान्द्र वर्ष की तिथियों के अनुसार होते हैं ऋतुओं से मेल न रहता, जैसा कि मुसलमानों के त्यौहारों का नहीं होता, क्योंकि वे केवल ३५५ दिन के चान्द्र वर्ष को मानते हैं। उनका **रमजान** मास कभी गर्मी की ऋतु में और कभी सर्दी की ऋतु में आता है।

भारत वर्ष के अधिक भाग में **विक्रम** का संवत् चलता है जो ईसवी सन् से ५७ वर्ष पहले का है। दक्षिण में बहुधा **शक** या **शालिवाहन** का संवत प्रचारित है जो ईसवी सन् से ७८ वर्ष पीछे रहता है। परन्तु दोनों प्रकार के संवत् में सौर व चान्द्र वर्ष का समान रूप से प्रयोग होता है।

सौर पंचाग में भूल का कारण—ज्योतिष विज्ञान Astronomy के अनुसार **सौरवर्ष** का ठीक मान ३६५। दिन नहीं हैं किन्तु ३६५ दिन ५ घंटे ४८ मिनट व ४६ सैकिंड होते हैं। यह ११ मिनट १४ सैकिंड का अन्तर लगभग १२५ वर्ष में एक पूरे दिन का हो जाता है। इस समय हमारे सौरवर्ष में २२ दिन की

भूल है। **विषुवत संक्रान्ति** (जो वैसाखी भी कहलाती है) वास्तव में २२ या २३ मार्च को होनी चाहिये, १३ या १४ अप्रेल को मानी जाती है। **विषुवत** शब्द का अर्थ **दिन व रात की समानता** का है, जैसा **अमरकोष** में कहा है **यत्र रात्रिन्दिवा साम्यं विषुवं विषु वच्चतत्**, अंग्रेजी में इसको Equinox कहते हैं। परन्तु दिन और रात वस्तुतः २३ मार्च को समान होते हैं इस २२ दिन की भूल से यह स्पष्ट है कि लगभग दो हजार वर्ष से हमारे **सौर पंचाग** का संशोधन नहीं हुआ। यौरपमें **जूलियस कलैण्डर** का प्रचार था जो रोम के प्रसिद्ध सम्राट **जूलियस सीजर** Julius Caesor ने चलाया था। वह भी ३६५। दिन का था। सोलहवीं शताब्दि में १० दिन का अन्तर पड़ गया था जिसको **पोप ग्रेगरी** Pope Gregory ने (जो स्वयं ज्योतिषी था) इस प्रकार शुद्ध किया कि सन् १५८२ में १० दिन छोड़ दिये और ४ अक्टूबर के बाद १५ अक्टूबर तारीख मानी गई। इस सुधार के साथ यौरप का पंचाग Gregorian Callendar ग्रेगरी के नाम से विख्यात है। हमारे पंचाग में भी इसी प्रकार २२ दिन छोड़ देने से संशोधन हो सकता है, अर्थात् किसी वर्ष में **चैत्रमास** की ८ तिथि के बाद वैशाख की १ तिथि (प्रतिपदा) या **संक्रान्ति** मानली जाय।

मैंने सन् १९३३ ई० में अर्थात् ऋषि दयानन्द **निर्वाण** अर्ध शताब्दि के अवसर पर इस सुधार का **प्रस्ताव धर्मार्य**

सभा में रक्खा था। सभा के निर्णय के अनुसार सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने यह आज्ञा देदी कि आर्य समाजों तथा सब आर्य सामाजिक संस्थाओं में **विक्रम सम्वत्** के साथ **सौर वर्ष** का प्रयोग किया जाये। २२ दिन की भूल के सुधार के विषय में भारत के प्रमुख ज्योतिषियों को पत्र भेजे गये। परन्तु इसमें क्या सफलता होनी थी? सन् १९३५ ई० में इन्दौर में **अ० भा० ज्योतिर्वित सम्मेलन** श्री पूज्य मदनमोहन मालवीय जी की अध्यक्षता में हुआ। मैंने उसमें अपना प्रस्ताव भेजा। परन्तु लगभग २०० ज्योतिषियों में से केवल ३ या ४ ने उसका समर्थन किया. शेष ने विरोध किया। कारण यह था कि इस भूल के दूर हो जाने से उनके फलित ज्योतिष के कार्यों में जो शास्त्र विरुद्ध और युक्तिविरुद्ध भी है, बाधा पड़ती थी।

सन् १९५० में मैंने इस विषय पर एक लेख **आर्यमित्र** में भेजा जो ११ सितम्बर १९५० के अंक में प्रकाशित हुआ। श्री मदनमोहन सेठ सभा के प्रधान महोदय ने उस लेख की नकल श्री माननीय सम्पूर्णानन्दजी के पास जो युक्त प्रांत सरकार के शिक्षा सदस्य थे अपने पत्र के साथ भेजी, वे संस्कृत के विद्वान हैं और ज्योतिष की भी अच्छी विज्ञता रखते हैं? श्रीमान् ने पत्र के उत्तर में सौर पंचांग की पूर्वोक्त भूल को और उसके संशोधन की उपयोगिता को स्वीकार किया। उक्त महो-

दय के पत्र के (जो उनकी अनुमति से १६-१०-५० के **आर्य मित्र** में प्रकाशित हुआ) अन्तिम वाक्य इस प्रकार थे—"यदि आप लोगों के प्रयत्न से भारतीय सरकार का ध्यान इन विषयों की ओर आकृष्ट हो सके तो न केवल भारत वरन सब जगत का कल्याण होगा। मेरी तुच्छ सेवा इस कार्य के लिये सदैव प्रस्तुत रहेगी।

ईश्वर की कृपा से ऐसा ही अवसर आगया भारत के Council of Scientific and Industrial Research विभाग की ओर से भारत के लिए एक शुद्ध पंचांग की योजना तय्यार करने के लिए एक Calender Reform Committee कमेटी बनाई गई जिसके अध्यक्ष कलकत्ते के विख्यात विद्वान श्री मेघनाद साह नियत हुए। २० मार्च १६५३ को उस कमेटी का कार्य आरम्भ हुआ और कई दिन तक जारी रहा। २६-३-५३ के **हिन्दुस्तान टाइम्स** में उसकी संक्षिप्त कार्रवाई प्रकाशित हुई। उससे यह विदित हुआ कि पूर्वोक्त कमेटी ने **सौरवर्ष** ही को भारत के लिए उपयुक्त पंचाग माना और उसमें चान्द्र वर्ष भी जोड़ दिया गया। मैंने २६ मार्च ५३ को एक पत्र रजिस्टरी डाक से श्री मेघनाद साह जी के पास भेजा जिसमें यह प्रार्थना की गई कि सौर पंचांग में जो २२ दिन की भूल है उसको दूर करके शुद्ध रूप में उक्त पंचांग स्वीकार किया जाय। अगस्त व सितम्बर १६५२ के Science & Culture नामक मासिक पत्र में श्री मेघनाद साह के २ विद्वत्पूर्ण

लेख इसी विषय पर छपे थे जिसमें उक्त महोदय ने बड़े प्रबल शब्दों में आधुनिक ज्योतिषियों की पूर्वोक्त स्पष्ट भूल सुधार न करने पर उनकी उग्र शब्दों में निन्दा की है।

१० अक्टूबर १९५३ को मैंने एक पत्र श्रीयुत सेक्रेटरी Secretary Council of Scientifie and Industrial Rescarch के पास रिफार्म कमेटी की रिपोर्ट के लिये लिखा। १४ अक्टूबर १९५३ के उनके उत्तर से ज्ञात हुआ कि रिफार्म कमेटी ने अपनी रिपोर्ट प्रकाशित नहीं की और उक्त कमेटी को सरकार ने यह आदेश दिया है कि आगामी ५ वर्षों के लिये भारतवर्ष के लिए परीक्षारूप से एक पंचांग तय्यार करे जो मार्च १९५४ के अन्त तक तय्यार हो जायगा। मैंने नवीन पंचांग के संबंध में जितनी महत्वपूर्ण बातें हैं उन सबकी ओर उक्त रिफार्म कमेटी का तथा शिक्षित जनता का ध्यान आकर्षित करने के लिए एक लेख 'हिन्दुस्तान टाइम्स' को भेजा जो २ नवम्बर १९५३ के अंक में प्रकाशित हुआ और उसकी एक नकल अपने पत्र के साथ श्री मेघनाथ साहजी के पास भेजी। उनका उत्तर शीघ्र ही आगया और १० नवम्बर १९५३ को रिफार्म कमेटी की, उस रिपोर्ट की नकल जो भारत सरकार को भेजी गई है पर अभी प्रकाशित नहीं हुई, प्राप्त हो गई। इस रिपोर्ट में **सौर पंचांग** की २३ दिन की भूल के संबन्ध में कमेटी का यह निर्णय होना स्पष्ट शब्दों में बतलाया गया है कि **सौर वर्ष** का प्रारम्भ **२२ मार्च** को होगा जब दिन व रात समान होते हैं।

ईसवी सन् Gregorian Calendar के स्थान में शक संवत् के प्रयोग की सिफारिश की गई है, जो ईसवी सन् से ७८ वर्ष कम होता है, अर्थात् सन् ७८ ईसवी से प्रारंभ होता है।

इंगलैंड के Greenwitch ग्रीननिच के स्थान में उज्जैन के अक्षांश के पास ज्योतिष संबन्धी सब कार्यों के लिये एक स्थान नियत होने का भी प्रस्ताव किया गया है, वास्तव में जब भारतवर्ष स्वतन्त्र था तो हमारे प्राचीन ज्योतिषी उज्जैन ही को नियत मध्यरेखा Fixed Meridian मानते थे। सिद्धान्त शिरोमणि में लिखा है—

"यल्लंकोज्जयिनी पुरोपरि कुरुक्षेत्रादि देशान् स्पृशत्। सूत्रं मेरुगतं बुधैर्निगदितं सा मध्य रेखा भुवः" (अर्थ)— लंका व उज्जयिनीपुर के ऊपर होकर कुरुक्षेत्रादि देशों को स्पर्श करता हुआ, जो सूत्र दोनों मेरुओं North Pole & South Pole पर होकर जाता है उसको विद्वानों ने पृथिवीकी नियत मध्यरेखा Fixed Meridian माना है। इस समय ग्रीनिच Greenwitch की मध्यरेखा का उपयोग किया जाता है।

रिफार्म कमेटी की पूर्वोक्त रिपोर्ट में और कई महत्व की बातें हैं जिनका यहां उल्लेख करना आवश्यक नहीं। मार्च १९५४ के पश्चात् कमेटी की रिपोर्ट भारत सरकार को भेजी जायगी और उसके बाद भारत सरकार की स्वीकृति से पूरा पंचांग प्रकाशित हो सकेगा।

---

२२ खण्ड—टिहरी में श्री स्वामी ज्ञानानन्दजी से भेंट और उनका परिचय।

अ. १३८—गंगोत्री में स्वामी ज्ञानानन्दजी से भेंट—सन् १९२३ ई० में मैंने टिहरी राज्य में रहते हुए **गंगोत्री**की पहली यात्रा की थी। गंगोत्री में मेरी **श्री स्वामी ज्ञानानन्दजी** से भेंट हुई जो उस समय एक कोपीनधारी साधु के वेश में थे, और इस समय देहलीके विख्यात National Physical Laboratary लेवोरेटरी में ऐसिस्टेन्ट डाइरेक्टर के उच्च पद पर महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। उक्त स्वामी जी की जीवन कथा ऐसी रोचक और विचित्र है कि उसका कुछ संक्षिप्त वर्णन देना आवश्यक और पाठकों को रोचक होगा। उनके पिता आंध्र देश के एक बड़े जागीरदार थे जिनका देहान्त हाल ही में लगभग २ वर्ष बीते हुआ। स्वामी जी उनके जेष्ठ पुत्र और जागीर के उत्तराधिकारी थे परन्तु उनको बाल अवस्था ही से वैराग्य था। १४ या १५ वर्ष की आयु में जब वे एक हाईस्कूल में शिक्षा पा रहे थे वे बहुधा गोदावरी नदी के प्रभाव को देख कर मुग्ध होजाते और ऐसे विचार किया करते थे कि यह मनुष्य जीवन का प्रवाह क्या वस्तु है और यह सृष्टि कैसे व क्यों उत्पन्न हुई, इत्यादि। एक रात को स्वप्न में उनको एक वृद्ध पुरुष दिखलाई दिया, जिसने उनसे कहा कि घर छोड़ कर योग की साधना करो। दूसरे या तीसरे दिन फिर इसी प्रकार का स्वप्न देखा। बालक ज्ञानानन्द केवल एक ओढ़ने का

वस्त्र लेकर रात को ही घर से चल पड़े। कुछ दूर पैदल चल कर रेल में सवार होगये और विहार के किसी जंगल में पहुँचे। वहाँ उनको एक जंगलात का ठेकेदार मिला जो आर्यसमाजी था। उसने बालक को भली प्रकार पालन करने व शिक्षा दिलाने की आशा दिलाई। बालक ने सीधा उत्तर यही दिया कि एक सुसपन्न पिता का घर छोड़ कर योग साधना के लिए आया है। उक्त सज्जन ने बालक ज्ञानानन्द को एक पत्र देकर कानपुर आर्यसमाज में इस आशा से भेजा कि वहाँ योग शिक्षा का कुछ प्रबन्ध होगा पर वहाँ कुछ न था। बालक ज्ञानानन्द कानपुर से निराश होकर देहली पहुँचे। वहाँ से **रिखीकेश** गये जहाँ बहुत से साधु रहा करते हैं। यहाँ उनको **स्वामी पूर्णानन्द** मिले जो संन्यास लेने से पूर्व बंगालमें वकालत करते थे, और एक अच्छे संस्कृतज्ञ और योगी थे। उनकी लिखी **पूर्णयोग** नाम पुस्तक जो **संस्कृत** भाषा में लिखी हुई थी मैंने देखी है। स्वामी पूर्णानन्दजी ने ज्ञानानन्दजी को संन्यास आश्रम की दीक्षा दी। तबसे उनका नाम स्वामी ज्ञानानन्द हुआ। रिखीकेश से वे काश्मीर व हिमालय पर्वतों में जाकर कई वर्ष तक तप व योग साधना करते रहे। **अमरनाथ** नामक स्थान काशमीर में सब से बड़ा तीर्थ स्थान है, वहाँ तथा अन्य प्रसिद्ध स्थानों में जिनमें एक गोडोपुरा था स्वामीजी ने कठिन तप किया और वहाँ उनको पूर्ण समाधि प्राप्त हुई। काशमीर से वे सन् १९२३ में **गंगोत्री** आये, जहाँ मेरी उनसे भेट हुई। उस समय उनकी आयु लगभग २३ या २४ वर्ष की थी। उनका

कहना था कि गंगोत्री का आध्यात्मिक वातावरण, काश्मीर से व बदरीनाथ केदारनाथ तीर्थों से भी श्रेष्ठतर है। जिसका कारण यह बतलाते थे कि प्राचीन समय में इस स्थान पर ऋषि मुनियों ने अधिक निवास किया था, और उसके प्रभाव से जो साधक वहाँ रह कर योग साधना करें उनको अपनी साधना में विशेष सहायता मिल सकती है।

स्वामी ज्ञानानन्दजी से थोड़ी देर वार्तालाप करने से ही मैं बहुत प्रभावित हुआ। मैंने उनको सच्चा योगी समझा व उनसे कुछ योग साधना सीखने की इच्छा प्रकट की। स्वामीजी ने जो उत्तर दिया वह बहुत युक्त था। उत्तर यह था कि योग बहुत प्रकार के हैं जिनमें तीन मुख्य हैं अर्थात ज्ञान योग, भक्तियोग व कर्म योग और मनुष्यों की प्रवृत्तियाँ भी मुख्यतया इन तीन प्रकार की ही होती हैं। इसलिए जबतक मेरे कुछ दिन तक उनके समीप रहने से वे मेरी ठीक प्रवृत्ति न जान सकें तबतक मुझको कोई साधना नहीं बतला सकते। मैं दौरे पर था और दूसरे ही दिन गंगोत्री से टिहरी की ओर प्रस्थान करने को था। स्वामीजी का विचार शीत या ठंडे ऋतु भर गंगोत्रीके पास, मुखबा स्थान पर जहां उस ऋतु में गंगोत्री के कपाट बन्द होजाने से गंगोत्री के पुजारी व पण्डा लोग रहते हैं, निवास करने का था, उसकी समाप्ति पर लगभग चैत्र या मार्च मास में टिहरी आने का विचार प्रकट किया। स्वामी जी वास्तव में उस पूरे शीत समय में मुखवा में रहे जो ९००० फीट की ऊँचाई पर बहुत ठंडी जगह है। सिवाय कोपीन

के कोई वस्त्र धारण नहीं करते थे। रात को ओढ़ने के लिए भी कोई वस्त्र नहीं था, और लगभग तीन मास (दिसम्बर, जनवरी फरवरी) में वहाँ एक खुले द्वार की गुफा में निवास करते रहे। मार्च सन १९२४ में वे एक साधक के साथ टिहरी पहुँचे। पीछे एकबार स्वामीजी ने बतलाया कि ऊपर लिखे प्रकार की तितिक्षा (अर्थात शीत आदि सहन करने का अभ्यास) भी योग साधना का एक अंग है जो एक नियत समय के लिए किया जाता है, अधिक समय तक या स्थायी रूप से उस का प्रयोग एक प्रकार का दिखावा मात्र होता है।

१३६—स्वामीजी का टिहरी में निवास—श्री महाराजा साहब स्व० नरेन्द्र शाह ने स्वामीजी के जीवन से प्रभावित होकर उनके लिए महल के समीप ही एक छोटी सी कुटी एकांत स्थान में बनवादी, और उनके भोजन आदि का यथोचित प्रबन्ध कर दिया। स्वामीजी ने अपने आगमन के कुछ दिन पीछे ही मुझको ध्यान व जप रूपी साधना के लिए क्रिया बतलाई। मेरी सहधर्मिणी श्रीमती प्रेम देवी को भी उनके अनुकूल शिक्षा दी, और मेरी पुत्री सुशीला देवी को भी एक मन्त्र दिया। हम सबको उस साधना से बहुत लाभ हुआ।

स्वामीजी ने उस समय केवल २ सप्ताह टिहरी में निवास किया, और फिर बदरीनाथ चले गये, एक वर्ष पीछे फिर टिहरी आये और लगभग एक वर्ष तक रहे। समय समय

पर वेदान्त व योग के उपदेश किया करते थे, और अनेक पुरुष व स्त्री शिक्षा ग्रहण करते थे। सन् १६२६ में मेरी प्रार्थना पर श्री स्वामी जी ने जगदीश स्वरूप व प्रकाश स्वरूप मेरे दो पुत्रों को जिनकी आयु उस समय ११ व १२ वर्ष की थी और जो उस समय टिहरी के हाई स्कूल में शिक्षा पा रहे थे, **उप नयन** संस्कार करके यज्ञोपवीत और गुरु मन्त्र दिया। स्वामी जी के टिहरी में निवास समय वे बहुधा उनके पास जाकर उनसे उपदेश लाभ करते थे। मैं व मेरी धर्मपत्नी प्रेम देवी भी बहुत बार उनके दर्शनों को जाते थे और उनके सत्संग से लाभ उठाते थे। उनकी कुटी हमारे निवास स्थान से कुछ अधिक दूर नहीं थी। महाराजा साहब के महल से एक **दूरबीन** लेकर स्वामी जी रात में आकाश के तारों को देखा करते थे, और एक या दो ज्योतिष Astronomy की पुस्तकें टिहरी पुस्तकालय से लेकर उनको पढ़ने से ज्योतिष का अच्छा अनुभव प्राप्त कर लिया था। Astro Physics ज्योतिष संबंधी विज्ञान में उनको विशेष रुचि हो गई, उसका योरुप जाने पर स्वामी जी ने अधिक प्रयोग किया जैसा आगे के वर्णन से विदित होगा।

अ० १४०—**स्वामीजी की योरुप यात्रा**—सन् १६२६ के अन्त में स्वामी जी टिहरी से अपने पितृ स्थान **गोरगम मूंडा भीमवरम्** को गये और अपने पिता से मिल कर सन् १६२७ के आरम्भ में जर्मनी को चले गये और दो वर्ष **ड्रेसडन व बर्लिन**

DRESDEN & BERLIN स्थानों में रहे। दिन के समय वहां के यूनिवर्सिटी व कालेजों की प्रयोगशालाओं में विज्ञान Physics सम्बन्धी अनुसन्धान का कार्य करते थे, और सायंकाल **योग और वेदान्त** विषयों पर बहुधा व्याख्यान दिया करते थे। सन् १९२८ में बिजली Electricity के कुछ प्रयोग करते समय अति तीव्र बिजली की धारा उनके दाहिने हाथ में लगी, जिस से हाथ को कठिन चोट पहुँची, हाथ की हड्डी में **क्षयी रोग** T B. of the bone हो गया. जिससे कई वर्ष तक हाथ लगभग बेकार रहा। इस घटना के कारण स्वामी जी सन् १९३० में जर्मनी से अपने घर भीम [illegible] चले गये, वहाँ से सन् १९३१ में नरेन्द्र नगर आगये जो उस समय महाराजा टिहरी का निवास स्थान था और सितम्बर १९३३ तक वहाँ रहे। इस बीच मुझको भी स्वामीजी के सत्संग का लाभ मिलता रहा। तब वहाँ से फिर योरुप चले गये और इस बार **जेकोस्लोवेकिया** Zechosolvachia की राजधानी **प्राह** Prague नगर में रहे, और **प्राह** Prague **यूनिवर्सिटी** में सन् १९३६ तक अनुसन्धान Research कार्य करते रहे रहे। वहाँ Spectroscopy of X Radiation विषय पर कई पुस्तकें वा लेख लिखे जिसके उपलक्ष में प्राह यूनिवर्सिटी ने स्वामीजी को D. Sc. **डाक्टर आफ सायंस** की डिगरी दी, यद्यपि उसके लिए इनकी माँग नहीं थी। अक्टूबर १९३६ में, स्वामीजी भारत को लौट आये और लगभग एक वर्ष तक नरेन्द्र नगर में रहे। मैं बहुत बार उनके

सत्संग से लाभ उठाता था। सितम्बर १६३६ में फिर स्वामीजी प्राह Prague पहुँच गये। उसी स्थान पर शीघ्र ही दूसरे महा युद्ध Second World War का आरम्भ हो गया जिसके कारण इनको लगभग दो मास तक Internce रूप से बन्धन में रहना पड़ा। नवम्बर १६३६ में इनको जाने की आज्ञा मिल गई और ये हालैंड होते हुए इंग्लिस्तान पहुँच गये।

जनवरी १६४० से १६४४ के अन्त तक स्वामी जी लिवरपूल Liverpool युनिवर्सिटी की एक बड़ी लेबोरेटरी में अनुसंधान Research का कार्य करते रहे, जिसके उपलक्ष में उनको लिवरपुल P H. D. पी. एच. डा. की डिग्री दी गई।

जनवरी १६४५ में स्वामी जी इंग्लिस्तान से अमेरिका America चले गये और वहाँ १६४७ के अक्टूबर मास तक मिकिगन Mickigan यूनिवर्सिटी में अनुसन्धान कार्य किया। दिसम्बर १६४७ में स्वामी जी भारत वर्ष लौट आये। जनवरी १६४८ में देहली में माननीय डा० जवाहरलालजी प्राइम मिनिस्टर महोदय से उनकी भेंट हुई जिसके फलस्वरूप वे भारतको सुप्रसिद्ध National Physical Laboratcry of India में एसिसटेन्ट डाइरेक्टर के पद पर नियत कर दिये गये।

अ--(१४१)-स्वामी ज्ञानानन्दजी की अद्भुत योग्यता।

योरुप जाने से पूर्व स्वामी ज्ञानानन्दजी ने केवल हाईस्कूल की ८ या ६ श्रेणी तक की शिक्षा पाई थी। मैट्रिक परीक्षा भी पास नहीं

की थी। उस समय (१५ या १६ वर्ष की आयु में) घर को छोड़ गये। जब स्वामी पूर्णानन्दजी ने उनको संन्यास की दीक्षा दी तब तक योग साधना का भी उनको अधिक अवसर या समय नहीं मिला था। संन्यास लेने पर काश्मीर में उनको **पूर्ण अर्थात् असंप्रज्ञात समाधि** होगई। इससे यही परिणाम निकलता है कि यह सब पूर्वजन्म के संस्कारों का फल था। गीता में श्रीकृष्णजी ने अर्जुन को (अ० ६ श्लोक ४०-४५ में) बतलाया है कि जिस योगी की योग साधना एक जन्म में पूरी नहीं होती उस का परिश्रम व्यर्थ नहीं जाता किन्तु उस साधना का फल एक संचित निधि के रूप से उसको अगले जन्म में मिल जाता है।

स्वामीजी पूछने पर कहा करते थे कि जब किसी Scientifie principle, विज्ञान के सिद्धांत के विषय में उनको कोई सन्देह या कठिनाई होती थी तो वे **समाधि** में बैठ जाते थे और उनको प्रकाश मिलजाता था। ऋषि दयानन्द की जीवनी से पाया जाता है कि ऋषि को वेद भाष्य करते समय अथवा अन्य समय किसी वेद मन्त्रों के अर्थ में द्विविधा होती थी तो वे समाधि लगाते थे और वह द्विविधा दूर होजाती थी। सिद्धान्त एक ही है, चाहे प्रश्न **किसी वेद मन्त्र के अर्थ** का हो अथवा किसी **विज्ञान के सिद्धांत** का हो। Science विज्ञान भी ईश्वरीय ज्ञान का ही भाग है। **योग दर्शन के विभूति पाद** में सूत्र सं० २१ यह है कि 'चन्द्रे ताराव्यूह ज्ञानम्' अर्थात् चन्द्रमा में **संयम** करने से, (ध्यान

धारणा व समाधि लगाने से) तारा समूह का ज्ञान हो जाता है। स्वामी ज्ञानानन्दजी का अनुसन्धान कार्य बहुत अंश में Astronomy तारागण के ज्ञान सम्बन्ध में होता था। विभूतिपाद में अन्य कई प्रकार के संयमों से भिन्न भिन्न प्रकार की सिद्धियों की प्राप्ति बतलाई गई है। स्वामी ज्ञानानन्दजी ने बिना किसी कालिज वा विद्यालय में नियमित शिक्षा प्राप्त किये ज्ञान व विज्ञान में जो अद्भुत उन्नति की वह उनकी इस जन्म तथा पूर्व जन्म की यौगिक साधना ही का परिणाम है, यह अनुमान सब प्रकार युक्त और सुसंगत ही है।

खण्ड २३–मेरा स्वास्थ्य व दिनचर्या।

अ. १४१––मेरे स्वास्थ्य की दशा—मेरा स्वास्थ्य बाल्यावस्था से ही अच्छा न था। जब मैं हाईस्कूल में शिक्षा पा रहा था कभी अजीर्णता की शिकायत हो जाती थी। मैं अपने स्वास्थ्य की काफी सावधानी रखता था। भ्रमण करने का अभ्यास मुझको बाल्यावस्था से ही है। कुछ और व्यायायाम (दण्ड मुद्गर आदि) भी बहुधा करता था। परन्तु स्कूल व कालिज में जो खेलकूद होते थे उनमें कम भाग लेता था। यह विद्यार्थीकाल में मेरे जीवनचर्या में एक त्रुटि थी। उस समय स्कूल व कालिजों में खेलकूद आदि Extra Mural Activities का इतना अधिक प्रबन्ध भी नहीं रहता था जितना वर्तमान समय में है, तो भी

जितना कुछ था उसमें भी मैं कम ही भाग लेता था। सन् १८६१ में बी० ए० परीक्षा पास होने के बाद मुझको **क्षयरोग** का आरम्भ होना पाया गया, जैसा कि पैरा १६ में लिखा जा चुका है। पर ईश्वर की कृपा से कुछ समय तक पढ़ना लिखना छोड़ने व चिकित्सा से रोग दब गया। तो भी उसके कारण शरीर में बहुत दुर्बलता होगई और एम० ए० परीक्षा पास करके जब मैंने मेरठ कालिज का प्रोफेसर होकर मेरठ में निवास आरम्भ किया तब मुझको कई प्रकार के रोग शुरू होगये, अर्थात् खाँसी, जुकाम, बदहजमी, जिसने संग्रहिणी का रूप धारण कर लिया था। ये सब रोग जो ४ या ५ वर्ष तक रहे शीत ऋतु में बढ़ जाते थे और मुझको सर्दी इतनी अधिक लगती थी, जितनी साधारण मनुष्यों को नहीं।

मेरठ छोड़ने पर और सन् १८६८ में डिप्टीकलक्टर नियुक्त होने पर दौरे आदि में रहने से मेरे ऊपर लिखे सब रोग लगभग शांत हो गये।

हर्निया रोग—Hernea सन् १६१० में जब मैं गोरखपुर में था, मुझको **दाहिनी आँत का हार्निया** रोग हो गया जिसकी जानकारी टैनिस खेलते समय हुई। गोरखपुर के सिविल सर्जन साहब ने परीक्षा करके एक Truss **ट्रस** वा पेटी की व्यवस्था करदी जिसको मैं तब से लगातार पहनता हूँ। मेरी उस समय की स्वास्थ्य दशा की दृष्टि से उक्त सर्जन साहब ने ऑपरेशन Operetion कराने की सलाह नहीं दी। इस तरह रोग एक प्रकार से बना ही रहा।

अर्श रोग—सन् १६३० ई० के लगभग हरिद्वार में मुझको अर्श Piles का रोग आरम्भ हो गया। अर्श खूनी नहीं थी वादी रूप की थी, मस्से हो गये थे। वह हर वर्ष वर्षा ऋतु में बढ़ जाता था। कांगड़ी गुरुकुल के प्रोफेसर श्री डा० चिम्मन लाल ने दो बार **इंजैक्शन** लगाये। इससे कुछ लाभ हुआ पर पुराने Chronic रोग के रूप में मस्से बने ही रहते हैं, और कभी २ काफी कष्ट देते हैं।

आँत का रोग—सन् १६२८ के लगभग जब मैं टिहरी में था मुझको एक पहाड़ी सरहद के मुकदमे में कुछ विकट घाटियों में यात्रा करनी पड़ी जिसके परिणाम रूप तीव्र अजीर्णता होगई जो २ या ३ वर्ष तक रही। Appendix ऐपेंडिक्स के रोग का शुबा हुआ और Appendicitis का ओपरेशन कराने की लखनऊ मेडिकल कालिज में पूरी तैयारी होगई। परन्तु अन्त में श्री डा० बेलीरामजी ने जो मेरे पुराने चिकित्सक थे ऐपेंडिक्स का रोग नहीं बतलाया। Colon वा बड़ी आँत के एक भाग में रोग था जिसको Colitis कहते हैं। उसकी चिकित्सा हुई। परन्तु पुराने Chronic रूप में वह कई वर्ष तक कष्ट देता रहा।

कुछ कठिन रोगों की होमियो पैथिक चिकित्सा से शांति—

(क) सन् १६३६-३७ में मुझको Neuritis नाम का एक कठिन वात रोग होगया। मेरे २८ अक्टूबर सन् १६३६ की डायरी में यह नोट है, "लगभग एक मास से बांई बांह में पीछे को मोड़ते

हुए कुछ दुःख होता है। तकलीफ रहती है। विशेष कर कपड़े पहनने में अधिक।" कई दिन तक बाँह में दर्द रहना लिखा गया। टिहरी के डाक्टरों के इलाज से आराम नहीं हुआ। मुझको उस समय महाराजा साहब की यह आज्ञा हुई कि लाहौर, मेरठ, आगरा लखनऊ के कालिजों का निरीक्षण करके यह रिपोर्ट दूँ कि दोनों महाराज कुमारों की शिक्षा का प्रबन्ध किस कालिज में किया जाय। इस प्रकार मुझको बाहर जाकर अपने रोग का इलाज कराने का अच्छा अवसर मिल गया।

मैंने २६ नवम्बर १९३६ को आगरे में श्री डा० जी० एन० व्यास से इलाज कराया। २९ नवम्बर ३६ को मैं लखनऊ में स्व० श्री रा० ब० डाक्टर वी०एन० व्यास से मिला जो उस समय युक्त प्रान्त में सर्वोत्तम चिकित्सक Physician माने जाते थे। उन्होंने मेरी अच्छी तरह परीक्षा की और यह बतलाया कि पाचन शक्ति के विकार से मल इकट्ठा होकर बाँह मे दर्द होता है। उसको दूर करने के लिए दवा लिखदी जिसका मैं प्रयोग करता रहा।

१० फरवरी १९३७ को मैं अपने जामाता श्री डा० रघुवंश शरण रस्तोगी से मिला जो कुछ वर्षों से होमियोपैथिक चिकित्सा करते थे। मेरी १० फरवरी १९३७ की डायरी में यह नोट है, "आज प्रातः काल रघुवंशजी की सलाह से और इलाज बन्द करके होमियोपैथिक इलाज आरंभ किया।" १२ फरवरी १९३७ को दर्द बहुत कम होना लिखा है। पीछे फिर बढ़ गया। २१ फरवरी

१६३७ को मैं देहली में डा० नीलाम्बर जोशीजी से मिला जो उस समय सबसे बड़े सर्जन माने जाते थे। मुझसे उनका पहिले से परिचय था। मैंने स्वयं उनको नहीं पहचाना, पर उनके कहने से मालूम हुआ कि सन् १६०७ में जब मैं गोरखपुर में डिप्टी कलेक्टर था तब वे उस जिले के बाँस गाँव डिस्पेन्सरी में ए० सर्जन थे। डा० जोशी ने मेरी बड़े ध्यान से परीक्षा की। उन्होंने डा० वी० एन० व्यास की बतलाई हुई दवा जारी रखने की सलाह दी और कहा कि "पूरा आराम होना संभव नहीं, परन्तु रोग बढ़े नही इसका यत्न करना चाहिये"। लगभग ऐसे ही शब्द डा० व्यासजी ने भो कहे थे। डा० जोशी ने Diathermy (एक बिजली का यन्त्र) का प्रयोग बतलाया। मैं उसी दिन डा० सेन के पास गया और Diathermy का प्रयोग कराया, जो १२ दिन अर्थात् २५ मार्च १६३७ तक जारी रहा। उसकी सेंक से कुछ चैन पड़ता था पर रोग दूर नहीं हुआ।

२५ जून १६३७ को श्री डा० रघुबंश जी मेरी पुत्री सुशीला सहित नरेन्द्र नगर आगये और लगभग १।। मास वहाँ ठहरे। इसलिए जैसा १०।२।३७ को उनकी सलाह से निश्चित हुआ था होमियोपैथिक इलाज फिर जारी किया गया। १।। मास तक उनके निवास से उसमें सब प्रकार की सुविधा हुई। अदल बदल कर कई दवाएँ वे देते रहे। ८ अगस्त १९३७ को वास्तव में रोग शान्त होगया। उस दिन का नोट है कि "दर्द नहीं रहा" और "बाँह की गति भी पहले से अच्छी है," १०।८।३९ को डा० रघुवंशशरण

जी पुत्री सुशीला सहित नरेन्द्र नगर से बिजनौर को चले गये। मेरे कुछ मित्रों को सन्देह था कि शायद शीत ऋतु में रोग फिर बढ़ जावे। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। १०।१।३८ को कुछ जुकाम हुआ। डायरी में नोट है-"रात को बाँह में भी दर्द रहा" ११ जनवरी सन् ३८ को भी इसी प्रकार का नोट है। जहाँ तक मुझको याद है बाँह में केवल कुछ दर्द हुआ, पर बाँह के मोड़ने में जो कठिनाई थी वह फिर नहीं हुई। इसके बाद कई मास तक बांह में दर्द होने का भी जिकर नही। सिर्फ ३१ मई सन् ३८ को नोट है, "बाँह में दर्द भी रहा,"। १ जून ३८ मे नोट है कि "बांह में दर्द भी कुछ कम है. इसके बाद जुकाम व अर्श का इलाज डा० रघुवंशशरणजी का होता रहा। जुलाई मास में मैं बिजनौर जाकर भी उनसे मिला। **परन्तु फिर बाँह में दर्द नहीं हुआ।** मुख्य बात यह है कि **बाँह के उठाने व मोड़ने में जो बाधा थी वह फिर कभी नहीं हुई।** १५ वर्ष बीत चुके। बाँइ बाँह में शीत ऋतु में यदि कुछ दर्द होता है तो साधारण सेंक व तेल की मालिश से जाता रहता है।

(ख) सन १९४८ में मूत्ररोग Prostrate Enlargement का भयंकर प्रकोप--जैसा कि पैरा ११३ में लिखा जा चुका है सन १९४८ के नवम्बर मास में ज्वालापुर आश्रम में रहते हुए मूत्र रोग Prostrate Enlargement का तीव्र प्रकोप हुआ। १६ नवम्बर को ऐसी भयंकर दुर्घटना होगई जिसके परि-

णाम स्वरूप ज्वालापुर आश्रम को छोड़ कर जयपुर आना पड़ा, और अपने पुत्र डा० प्रकाश स्वरूप रस्तोगीजी के पास निवास किया। रोग की ऐसी तीव्र दशा थी कि आधे आधे घन्टे के बाद मूत्र त्याग करना पड़ता था। मेरे पुत्र ने इलाज शुरू किया। जयपुर के सबसे योग्य सर्जन श्री डा० सेन से परीक्षा कराई गई। उक्त डाक्टर महोदय ने **ऑपरेशन** कराने की सलाह नहीं दी। इलाज किया, पर कुछ अधिक लाभ न हुआ। तब मैंने अपने जामाता डा० रघुवंशशरण रस्तोगीजी का होमियो पैथिक इलाज, (जिससे सन् १९३७ में Neuritis वा वातरोग की निवृत्ति में सफलता हुई थी), पत्र व्यवहार द्वारा शुरू किया। डाक्टर साहब ने २८ सितम्बर १९५० को Hepar Sulpper २०० की एक मात्रा दी। दूसरी मात्रा १९-१०-५० को और तीसरी मात्रा १२-१२-५० को दी। इस एक औषध की ३ मात्राओं से मेरा कठिन रोग एक चौथाई रह गया। सन १९५१ में उसी प्रकार शान्त रहा और अब भी वही दशा है, दवा का प्रयोग होता रहा। अब मुझको दो घंटे, (कभी कभी ३ घंटे) से पहले मूत्र त्याग के लिए वेदना नहीं होती। यह रोग Prostrate Enlargement एक "Old mens' disease" "वृद्धावस्था का रोग" माना जाता है, इसलिए उसकी वर्तमान दशा को मैं कष्ट दायक नहीं समझता।

(ग) सन १९५२ में गले का रोग Laryngitis &

Hoarseness-सन १६५२ में Influenza रोग के बाद एक रात में सर्दी लगजाने से **गले का रोग** होगया। बोलने में कठिनाई तथा पीड़ा भी होती थी। बहुत धीमे स्वर में बोला जाता था। रोग १८ जुलाई को शुरू हुआ मेरे पुत्र डा० प्रकाश स्वरूपजी चिकित्सा करते रहे। सब प्रकार के इलाज किये गये, (जैसे प्लास्टर बांधँना, भपारादेना तथा इंजेक्शन आदि), पर कम ही लाभ हुआ। Hoarseness की शिकायत बनी रही। ६ अगस्त ५२ को डा० रघुवंश शरण रस्तोगी देहरादून से जयपुर आये, वे वास्तव में मेरी धर्मपत्नी प्रेमदेवी जी के इलाज के लिए आये थे, जिनकी टांग में पुराना रोग था। उन्होंने मेरे गले के रोग को भी देखा और उसी दिन अर्थात ६-८-५२ को शाम को अपनी होमियो-पैथिक दवा दी। उस रात में ही बहुत लाभ हुआ।

मैंने ७अगस्त को **डायरी** में यह नोट लिखा—"गले की तकलीफ में कुछ कमी है।" ८-८-५२ की **डायरी** में ये नोट लिखा है--"मेरे गले को शिकायत में बहुत कमी है।" वास्तव में मेरे रोग Hoarseness को आधा आराम दूसरे दिन ही होगया था। ४ या पांच दिन बाद ¾ रोग जाता रहा। ३० अगस्त १६५२ को मैंने यह नोट लिखा है कि गले का रोग जाता रहा "Hoarseness cured"। Hoarseness अर्थात् बोलने की तकलीफ नहीं रही। १ सितंबर ५२ को मैं फतेहटीबा मोहल्ले के यज्ञ में जो पंजाब के सुप्रसिद्ध महात्मा प्रभु आश्रित (पूर्वनाम महात्मा टेकचन्द) की अध्यक्षता

में हुआ था, गया। महात्माजी के आदेश से मैंने थोड़ा भाषण दिया, पर संकोच के साथ। ६ सितम्बर ५२ को यज्ञ की समाप्ति थी। मैं शामिल हुआ। पूर्णाहुति के बाद महात्माजी का बड़ा रोचक उपदेश हुआ और उनके अनुरोध से मैंने भी भाषण किया। मुझको बोलने में कठिनाई नहीं हुई।

डा० रघुवंशशरण रस्तोगी जिनकी चिकित्सा का ऊपर जिकर किया गया, उनका पूरा परिचय इस प्रकार है— Dr. R. S. Rastogi, B. A M. D. H., Homeopath, Member International Hahnemanian Association Inc. U. S. A., President District Homeo Association Dehradun, Vice President U. P. Homeopathic Association, Member U.P. Homeopethic Medical Board.

अ० १४२ मेरी जीवन चर्य्या––कई प्रकार के पुराने व दवे रोग रहते हुए भी ईश्वर की कृपा से मेरे स्वास्थ्य की साधारण दशा इस वृद्ध अवस्था में भी बुरी नहीं है। इस पर मेरे कुछ मित्र, (विशेषकर वे जिनको मेरी पुरानी अवस्था का परिचय नहीं) कभी कभी आश्चर्य करते हैं और पूछा करते हैं कि इसके क्या कारण हैं। उनका संक्षेप से उल्लेख करना उचित मालूम होता है।

(क) नियमित जीवन और संयम––Regular Life Plain Living––शारीरिक दशा अच्छी रहने का मुख्य

कारण मैं अपना **नियमित जीवन** समझता हूँ जो ईश्वर की कृपा से अब तक जारी है। निद्रा त्याग के बाद मैं नियत समय पर उठता हूँ। शौचादि नित्य क्रिया और ईश्वर का ध्यान पूजा करके भ्रमण को जाता हूँ। नियत समय पर स्नान व भोजन करता हूँ। भोजन अल्प और सादा करता हूँ। सांयकाल फिर भ्रमण करके नियत समय पर सो जाता हूँ। गीता के अ० ६ में यह श्लोक है--

"युक्ताहार विहारस्य, युक्त चेष्टस्य कर्मण:
युक्त स्वप्नाववोधस्य योगो भवति दु:खहा ॥ (श्लोक १६)

(अर्थात) "जिस मनुष्य का भोजन व अन्य व्यवहार नियमित रहता है, सब कर्म नियमित होते हैं, नियमित काल सोने व जागने का होता है, उसका योग दु:ख रहित होता है।" जो बात यहाँ योगी के लिये कही गई वह सब मनुष्यों के लिये ही उपयुक्त है।

शरीर रक्षा व स्वास्थ्य के संबन्ध में कुछ और मेरे अनुभव की बातें हैं जिनसे मैंने बहुत लाभ उठाया है। उनको लिखना भी आवश्यक है—

(ख) अच्छी प्रकार चबाकर भोजन करना--यह एक प्रसिद्ध बात है कि भोजन को खूब चबा कर खाना चाहिये। मेरा बाल्यकाल से ऐसा ही नियमित अभ्यास रहा जिसको तोड़ना भी मेरे लिये कठिन है। कहावत है कि इंगलैंड के प्रसिद्ध नेता Gladstone श्री ग्लैडस्टोन हर एक ग्रास को कम से कम ३० बार चबा कर खाते थे। मैं खाते हुए गिनती तो नहीं करता

हूँ, पर एक दो वार परीक्षार्थ मैंने गिना तो मालूम हुआ कि मैं वास्तव में ३० से भी अधिक बढ़कर प्रत्येक ग्रास को चबाता हूँ। इसके दो प्रत्यक्ष फल मेरे अनुभव में आये। एक यह कि भोजन करते समय प्यास नहीं लगती। मैं भोजन के बीच में लगभग ३० या ४० वर्ष से जल नहीं पीता। कारण स्पष्ट है। अधिक चबाने से इतना अधिक रस Saliva मुख में पैदा होकर भोजन में मिल जाता है कि जल पीने की आवश्यकता नहीं रहती। मैं भोजन के लगभग १½ या २ घंटा पीछे पर्य्याप्त मात्रा में जल पान करता हूँ।

पूर्वोक्त अभ्यास का दूसरा परिणाम यह होता है कि मनुष्य जितना भोजन करता है उसकी मात्रा में कुछ कमी हो जाती है। इस बात का बहुत से चिकित्सा शास्त्र के ग्रन्थों में भी वर्णन है। कारण स्पष्ट है कि अधिक चबाने से भोजन का अधिक रस निकलकर शरीर में शामिल होता है। जब कुछ अल्प मात्रा के भोजन से ही शरीर को अपने पोषण के लिये पर्याप्त रस मिल जाता है, तो फिर अधिक की इच्छा क्यों होवे? शरीर की जितनी माँग होती है उतनेही भोजन की इच्छा होती है, इसीको भूख या बुभुक्षा कहते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि अधिक चबा कर भोजन करने से दो लाभ होते हैं, भोजन की मात्रा में कमी होकर धन के व्यय में बचत होती है, और भोजन अच्छी तरह पच कर शरीर स्वस्थ और पुष्ट रहता है। मेरे भोजन की मात्रा सदा अल्प रही। मैं इसका मुख्य कारण अधिक चबा कर खाने की अपनी पुरानी आदत को ही समझता हूँ।

(ग) सोते समय मुँह व नाक को ढक कर न सोना-- विज्ञान का यह प्रसिद्ध सिद्धान्त है कि जब हम साँस लेते हैं तो शुद्ध वायु फेफड़ों के भीतर जाती है जिसमें **प्राणप्रद वायु** Oxygen की मात्रा अधिक रहती है। फेफड़े उसको लेकर उसके स्थान में **कार्बोलिक एसिड गैस** जो एक ज़हरीली वायु होती है बाहर निकालते हैं। इस प्रकार हमारे साँस लेने से बाहर की वायु गन्दी हो जाती है। यही कारण है कि जब किसी छोटे और बन्द स्थान में बहुत से मनुष्य होते हैं तो वायु अधिक गन्दी हो कर वहाँ के मनुष्यों को घबराहट सी होने लगती है।

इससे यह परिणाम निकला कि सोते समय मुख व नाक खुली रहनी चाहिए। यदि वे कपड़े आदि से ढक लिये जावें तो जो गन्दी हवा साँस लेने से निकलेगी फिर वह गन्दी हवा साँस के साथ फेफड़ों में जावेगी, और वह अधिक गन्दी होकर निकलेगी। यही सिलसिला जारी रहेगा। इस से स्वास्थ्य को बड़ी हानि होगी। क्योंकि स्वास्थ्य के लिए अन्न व जल से भी अधिक शुद्ध वायु की आवश्यकता है। यदि शीत अधिक हो तो सिर को कपड़े से ढक लिया जाय मुख व नाक खुले रहें। यदि मुख भी ढक लिया जाय तो विशेष हानि नहीं पर नाक अवश्य खुली रहे। यह भी ध्यान योग्य बात है कि **साँस सदा नाक से ही लेना चाहिये मुख से नहीं**। मुख केवल भोजन करते वा जल आदि पान करते अथवा भाषण करते समय खुलना चाहिये। इन्हीं क्रियाओं के लिये वह बनाया गया है, और

समय मुख बन्द ही रहना अच्छा है, साँस लेने के लिये ईश्वर नें नाक ही बनाई है। उसके भीतर कुछ बाल रहते हैं जो हवा के साथ यदि गर्दन आदि कोई वस्तु आवे तो वह बालों में रुक जाती है, फेफड़ों के भीतर नहीं जाने पाती। बालकों को आरभ से ही ऐसा अभ्यास डालना चाहिये कि वे मुख के द्वारा साँस न लेकर नाक के ही द्वारा साँस लेवें।

(घ) शिर, गर्दन व पीठ एक सीध में व उन्नत रहनी चाहिये। गीता के अ० ६ में यह श्लोक है--"समं कायशिरोग्रीवं धारयन्न चित्त स्थिर: संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्"। (अर्थ) काया व शरीर और **गर्दन** को सीधी, व अचल रखकर स्थिर होकर नासिका के अग्र भाग में ध्यान लगावे और इधर उधर दृष्टि न जाने दे।" यह उपदेश **योग साधन!** में ध्यान लगाने के लिए दिया गया है। इसी प्रकार **श्वेताश्वर उपनिषद्** में विधान है—"त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं, हृदीन्द्रियाणि मनसा संनिवेश्य" तीनों अ० २ श्लोक ८ (अर्थात) तीनों (शिर, गर्दन व पीठ) को उन्नत और सीधी रखकर हृदय में मन के सहित इन्द्रियों को भली प्रकार रक्खे।" जैसे योग की अन्य बहुत सी क्रियायें है ये केवल साधकों को ही नहीं, किन्तु साधारण मनुष्यों को भी उपयोगी होती हैं। बहुत से लोग विना कारण गर्दन वा पीठ को झुकाकर चलते वा बैठते हैं। ऐसी आदत से कुछ लोगों की (विशेष कर वृद्धावस्था में) गर्दन व पीठ झुक जाती है, और कोई कोई कुबड़े हो जाते हैं। हमारी बुद्धि का

स्थान Brain **मस्तिष्क** (शिर के भीतर का भेजा) है। हमारी पीठ में जो **मेरु दण्ड** Spinal chord है वह भी एक प्रकार मस्तिष्क Nervous System का ही अंग है। हमारे सारे शरीर में जो सूक्ष्म नाड़ियाँ Nerves फैली हुई हैं और जिनके द्वारा हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ काम करती हैं तथा हमारे मन को दु:ख वा सुख की सूचना मिलती है, वे सब मस्तिष्क व मेरुदण्ड Nervous System ही से निकली हैं।

गर्दन इन दोनों[मस्तिष्क व मेरु दण्ड]के बीच में है। इसलिये ये **तीनों सीधे व उन्नत रहने चाहिये।** यदि ऐसा न होवे शरीर की ज्ञानन्नाड़ियां Nerves अपना काम भली प्रकार नहीं कर सकेंगी। **योग** का लक्षण "योगश्चित्त वृत्ति निरोध:" अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध करना है, और उसका उद्देश्य **मन** को एकाग्र करना और **बुद्धि** को स्थिर करना है। इस लिए **योग** की साधना (प्राणायाम ध्यान आदि) में **शिर, गर्दन, व पीठ** को सीधा व उन्नत रखने का विशेष रूप से विधान किया गया है, पर वह सब ही मनुष्यों के लिए उपयोगी व लाभदायक है। अभ्यास से उसके पालन में कोई कठिनाई नहीं रहती। मैं चलते फिरते, खाते, पीते, उठते, बैठते पढ़ते लिखते, सदा तीनों को सीधा व उन्नत रखता हूँ। बिना किसी विशेष कारण के, (जैसा अभिवादन करने, इत्यादि में) कभी गर्दन या पीठ झुकाने का अवसर नहीं आता, पीठ को झुकाने का तो और भी कम अवसर

होता है। बालकों को बाल्यावस्था से ही ऐसा अभ्यास डालना चाहिए कि वे बैठते, उठते, चलते फिरते सदा गर्दन सीधी रखें।

---

२४ खण्ड—मेरी योग साधना

अ०—१४३—मुझको आरम्भ से ही **योग साधना** की ओर रुचि रही। यह विचार कि गुरु एक ही होना चाहिए युक्त नहीं, सिवाय उस धारणा के कि **ईश्वर सब का गुरु है** जैसा कि योग दर्शन के इस सूत्र में कहा गया—

"स सर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्," अर्थात ईश्वर सब पूर्व आचार्यों का गुरु है, काल का अवच्छेद न होने से। योग भी अन्य विद्याओं की तरह एक विद्या है, और मनुष्य जिन योग्य विद्वानों से चाहे उसकी शिक्षा ग्रहण कर सकता है। सब प्रकार के योगों में एक प्रथा है कि किसी साधक को बिना गुरु की आज्ञा के सिवाय गुरु के या ऐसे मनुष्य के जो उसी गुरू से शिक्षा पाता हो अपनी प्रगति का वर्णन नहीं करना चाहिए। यह एक प्रकार युक्त ही है। क्योंकि संभव है कि जो साधना एक साधक को उपयुक्त है वह दूसरे साधक को न हो। मैं इस स्थान पर केवल उन महात्माओं के नाम लिखना चाहता हूँ जिनसे मैंने इस विषय की शिक्षा प्राप्त की। इनके सिवाय अन्य व्यक्तियों से भी कुछ बातें सीखी होंगी।

(१) सन् १८८६ के लगभग १५ वर्षकी आयु में **श्री स्वामी लक्ष्मणानन्द जी** से जो एक आर्यसमाजी संन्यासी थे मेरठ

में मैंने **साधारण आसन व प्राणायामकी विधि** सीखी थी।

[२] सन १६२४ ई० में जब मैं टिहरी में था, **श्री स्वामी ज्ञानानन्द जी** ने, जो इस समय नैशनल लैबोरेटरी देहली में एसिस्टेंट डाईरेक्टर का कार्य करते हैं, मुझको **ध्यान की विधि** सिखाई। उक्त स्वामीजी का विस्तृत वर्णन खण्ड २२ में दिया जा चुका है।

(३) सन् १६२६ के लगभग मैंने **स्व० श्री स्वामी सियारामजी** से जो देहरादून में रहते थे और पहले गुरुकुल कांगड़ी में अध्यक्ष का कार्य करते थे कुछ सीखा, पर बीमार होजाने के कारण कुछ अधिक नहीं सीख सका। स्वामी ओमानन्दजी के गुरू श्री स्वामी सोमतीर्थजी श्री स्वामी सियारामजी के मुख्य शिष्यों में थे।

[४] सन् १६२६ में लाहौर में **श्री स्वामी सत्यानन्दजी** से कूछ शिक्षा प्राप्त की।

[५] सन् १६४१ के लगभग **स्वामी ओमानन्दजी** के **"पातंजल योग प्रदीप"** ग्रन्थसे और समय समय पर सत्संग द्वारा भी उनसे शिक्षा प्राप्त की।

[६] सन् १६४० से १६४४ तक **स्व० श्री अरविन्दजी** के प्रसिद्ध आश्रम में पांडोचेरी रहते समय उनके रचे हुए ग्रन्थों के द्वारा उनकी पद्धति के अनुसार योगसाधना करता रहा। उक्त आश्रम का वर्णन खण्ड ११ में कुछ विस्तारके साथ दियागया है।

श्री अरविन्द ने अपनी योग विधि में Aspiration "अभीप्स" अर्थात् ईश्वर प्राप्ति की उत्कट इच्छा और श्रद्धा तथा **आत्मसमर्पण** पर अधिक बल दिया है। **आत्मसमर्पण** वही विधि है जिसका **पातंजल योग में ईश्वर प्रणिधान** नाम है। मैंने इस साधना से विशेष लाभ उठाया, इसकी व्याख्या आगे की गई है।

[अ०१४४] **थकान दूर करना, या विश्राम** Relaxation यह योग की एक साधारण क्रिया है, और बहुत उपयोगी है, इसलिए वर्तमान अंग्रेजी में लिखी स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकों में व पत्रों में भी इस क्रिया का वर्णन या व्याख्या रहती है। उदाहरणार्थ बम्बई के प्रसिद्ध साप्ताहिक चित्र युक्त पत्र, Illustrated Weekly of India के अगस्त १ व ८ के अंकों में इस विषय पर दो उत्तम लेख छपे हैं।

इस क्रिया की संक्षिप्त विधि इस प्रकार है:-पलंग पर या भूमि पर सीधे चित्त लेट जाइये, हाथ व टाँगें सीधी रहें। सिर भूमि से कुछ उठा रहे जैसा साधारण तकिये से रहता है। गर्दन में या कमर में यदि कुछ बन्धन हो तो ढीला कर दिया जाय। आँखें कुछ बन्द रहें। सारा शरीर ढीला कर दिया जाय, किसी अंग में तनाव Tension न रहे, साँस साधारण रीति से चले, अथवा कुछ कम गति से। मन में कुछ विचार न आवें, अर्थात् मस्तिष्क में भी तनाव बिलकुल न रहे। **योग में इसको शवासन** कहते हैं जिसका अभिप्राय है शव[या मुर्दे]कीसी दशा। १० या १५ मिनट

इस प्रकार पड़े रहने से सब थकान शरीर तथा मन का भी दूर हो जायगी। अगर ज्यादा थकान रही हो तो आध घन्टा तक पड़े रहिए। कम थकान होने की दशा में ५ मिनट में भी लाभ होता है।

पलंग या भूमि पर लेटने के स्थान में **आराम कुर्सी** पर बाँह व टाँगें फैला कर लेटने या बैठने से भी लगभग वैसा ही लाभ होगा। शर्त यह है **शरीर के सब अंग ढीले छोड़े** जायँ और मन में विचार न आवे, जिससे मन को भी आराम मिले।

लेटने या बैठने से अच्छा आराम मिलता है। पर यदि (आवश्यकतानुसार) **खड़े हुए** भी मनुष्य सारे शरीर को ढीला कर देवे तो कुछ आराम मिल जाता है। सिपाही व पुलिस के लोग **कवायद** करते समय जब Attention का निर्देश होने पर तन कर खड़े होते हैं, फिर Stand at ease की आज्ञा होने पर शरीर को ढीला कर देते हैं, तो उसका अभिप्राय यही है कि शरीर की नसों Nerves को आराम मिल कर शरीर को थकान कम होवे।

अ० १४५--निद्रा न आना वा कम आना— स्वास्थ्य की हानि के दो मुख्य कारण होते हैं, एक **भोजन** का न पचना, दूसरा **नींद** न आना। आरम्भ काल से मेरा भोजन अल्प है और सादा, और मैं उसको बहुत अधिक चबा कर खाता हूँ, जैसा कि अनु० १४२ [ख] में विस्तार के साथ लिखा गया।

इसलिए मुझ को अजीर्णता की शिकायत कम होती है। स्वास्थ्य रक्षा की एक उत्तम पुस्तक में मैंने यह पढ़ा कि वृद्धावस्था में यदि नित्य प्रतिदिन **शौच** न हो तो **कब्ज** [कोष्ठ वद्ध] नहीं समझना चाहिए। यदि पेट वा सिर में भारीपन न हो। दो दिन तक शौच न हो तब कब्ज मानना चाहिए। मैंने इस सलाह से बहुत लाभ उठाया। साधरणतया वृद्धावस्था में भी यदि प्रतिदिन शौच न हो तो कोई लोग (कुछ कष्ट न होते हुए भी) उसको **कब्ज** मान कर कुछ रेचक पदार्थ का या **एनिमा** का उपयोग करते हैं। मैं ऐसा नहीं करता।

निंद्रा न आना Sleeplessness कठिन रोग है। सन् १६४०ई में लगभग एक वर्ष तक मुझको यह रोग रहा। मेरठ के प्रसिद्ध **होमियोपैथिक** डाक्टर चौधरीजी का इलाज होता रहा, कुछ और भी दवाओं का प्रयोग किया, पर कुछ शिकायत बनी ही रहती थी। नीचे लिखी साधना से जाती रही।

पलंग पर लेटे हुए सारे शरीर को उसी प्रकार ढीला छोड़िये जैसा कि ऊपर के अनुच्छेद में बतलाया गया। मन को बिलकुल शान्त कर लीजिए, कोई विचार न आने पावे। तब ओम् शब्द का जप कीजिए, चाहे साधारण जप की विधि से या जिसको अजपा जाप कहते हैं उस विधि से। इस प्रकार ५ या १० मिनट में नींद आजायगी, यदि मन शान्त रहे और कोई विचार न आने पावे। यदि इस साधना से नींद न भी आवे, तो शरीर को बहुत अंश में लगभग वैसा ही आराम मिल जायगा

जैसा नींद से मिलता है। वास्तव में स्वाभाविक रीति से भी नींद तभी आती है जबकि शरीर व दिमाग में ढीलापन होता है।

अ० १४६ —मन का वशीकरण—शान्त मन Quiet-Mind, **नीरवता या नीरव मन** Silent Mind, **रिक्त मन** Vacant Mind.

मन का नियन्त्रण एक महत्वपूर्ण साधना है। एक कहावत है—"मन एव मनुष्याणां कारणं वन्ध मोक्षयोः" अर्थात् मन ही मनुष्य के वन्ध या मोक्ष का कारण है। श्री अरविन्दजी के योग में इसका वड़ा महत्व है। उन्होंने अपनी जीवनी में जो अन्तिम रूप से संशोधित हो कर श्री अरविन्द आश्रम के सुप्रसिद्ध मासिक पत्र 'अदिति' में प्रकाशित होनी आरम्भ हुई है, लिखा है कि उन्होंने योग साधना के लिए कभी किसी से दीक्षा नहीं ली। उनको सबसे बड़ी सहायता पांडीचेरी जाने से पहले [अर्थात् सन् १९१० से पूर्व] बड़ौदा में एक महाराष्ट्र योगी **श्री विष्णुभाएकर लैले** से मिली थी। वे लिखते हैं "इसके लिए मैं लैले का अत्यधिक ऋणी हूँ कि उन्होंने इस तथ्य का साक्षात कार कराया" [अदिति वर्ष १२ अंक ३, अगस्त १६५४]। इसका सार यह है कि मन में कोई भी विचार न आने पावे, और मन रिक्त हो जावे। यह साधना इतनी उत्तम और अपेक्षित या सुगम भी है, कि मैं उसको श्री अरविन्द के ही शब्दों में लिखना उचित समझता हूँ।

"ध्यान के लिए बैठ जाओ" उन्होंने कहा, "परन्तु कुछ भी सोचो नहीं, केवल अपने मन का निरीक्षण करो। तुम विचारों को उसके अन्दर आते देखोगे, उनके प्रवेश कर सकने के पूर्व उन्हें अपने मन से तब तक दूर फेंकते रहो जबतक तुम्हारा मन पूर्ण नीरवता प्राप्त करने में समर्थ न हो जाय।" मैंने यह पहले कभी नहीं सुना था कि विचार प्रत्यक्ष रूप में बाहर से हमारे मन में आते हैं। परन्तु इस सत्य या इसकी सम्भावना पर शंका करने की बात भी मेरे मन में नहीं आई। बस मैं बैठ गया और ऐसा ही किया। क्षण भर में मेरा मन उच्च पर्वत शिखर के निर्वात आकाश की भांति शान्त हो गया, और तब मैंने देखा कि एक विचार फिर दूसरा विचार बाहर से स्पष्ट रूप में आ रहा है। इसके पूर्व वे मेरे मस्तिष्क में घुस कर उसे अपने अधिकार में कर सकें, मैंने उन्हें झट दूर फेंक दिया, और तीन दिनों में ही मैं उनसे मुक्त हो गया। उसी क्षण में सिद्धान्ततः मेरे अन्दर का मनोमय पुरुष एक स्वतन्त्र "प्रज्ञा" किंवा विराट "मन" बन गया जो विचारों के कारखाने के एक मजदूर की भांति व्यक्ति विचार के संकुचित घेरे में बन्धा नहीं था, बल्कि सत्ता के सैंकड़ों स्तरों में ज्ञान ग्रहण करने लगा, तथा इस विशाल दर्शन साम्राज्य एवं विचार साम्राज्य में से अपनी इच्छा के अनुसार विषयों और विचारों का चुनाव करने में स्वतन्त्र था। यह सब मैंने केवल इस बात पर बल देने के लिए बतलाया है कि हमारे **मनोमय पुरुष** की शक्यताओं की सीमा नहीं बाँधी जा सकती और यह स्वतन्त्र

साक्षी तथा अपने गृह का स्वामी बन सकता है। मेरे कहने का यह मतलब नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति इसे मेरी ही तरह और उसी वेग के साथ निश्चित रूप में कर सकता है, [क्योंकि मुझे अवश्य ही समय लगा, अनेक वर्ष लगगये,] किन्तु अपने मनकी एक प्रकार की बढ़ती हुई स्वतन्त्रता और प्रभुता प्राप्त करना किसी भी साधक के लिये पूर्ण रूप से संभव है, यदि उसमें उस कार्य्य को करने के लिये श्रद्धा तथा संकल्प विद्यमान हों।" ५ अगस्त १९३२ (अदिति पृ० ७९...८०)।

श्री अरविन्दजी ने अन्यत्र लिखा है कि वे पूर्वोक्त साधना को उसी समय से निरन्तर करते रहे, पांडी चेरी आने पर वहां भी अन्त तक उसको जारी रक्खा। इस साधना में मन को तीन दशाएँ आती हैं जिनका संक्षेप से नीचे उल्लेख किया जाता है।

(१) **शान्त मन** Quiet Mind. उसके प्राप्त करने की यह विधि है—

शरीर को ढीला करके सुखासन पर बैठ जाए। **प्राणायाम** या ईश्वर का ध्यान करे जैसा कि सन्ध्या विधि में बतलाया गया है, अथवा गायत्री मन्त्र को अर्थ सहित ध्यान करते हुए जप करे, ईश्वर के अतिरिक्त और किसी पदार्थ का विचार मन में न आवे, मन शान्त हो जायगा।

(२) **नीरवता या नीरवमन** Silent Mind. यह दशा

शान्त मन से ऊंची है। श्री अरविन्द जी के वर्णन से (जिसका विस्तृत उदाहरण ऊपर दिया गया) यह स्पष्ट है कि **शान्त मन** होने पर भी विचार बाहर से आते रहते हैं, और साधक को उनको रोकने व "बाहर फेंकने" की आवश्यकता होती है, **तब नीरवता प्राप्त होती है।** इसकी विधि वही है जो श्री अरविन्द जी ने उत्तम प्रकार से बताई है। मैं अपने अनुभव से भी कह सकता हूँ कि यह विधि अशक्य नहीं। यदि साधक अपनी आत्मा के द्वारा मनका निरीक्षण करे तो वास्तव में विचार इस प्रकार आते दीखते हैं जैसा बाहर से आते हों, और उनको रोककर बाहर फेंकना संभव है। इस विधि से मन नीरव हो जायगा।

(३) रिक्तमन Vacant Mind. **यह दशा नीरवता से भी ऊँची है** और बहुत कठिन है। शान्त मन की दशा में ईश्वर का ध्यान वा अन्य कोई एक विचार मनमें रहता है। नीरवता में कोई भी विचार मनमें नहीं रहता। श्री अरविन्द जी ने अपनी ऊपर वर्णित साधना के विषय में लिखा है—"तीन दिन में, वस्तुतः एक ही दिन में मेरा मन शाश्वत शान्ति से परिपूरित होगया। वह शान्ति अभीतक विद्यमान है" (यह लेख ५।८।३२ का लिखा हुआ है। श्री लैले जी से साधना सन् १९१० से पूर्व सीखी थी।) नीरवता की दशा यदि स्थिर रहे तो मन रिक्त हो सकता है। कठिनाई विचारों को मनमें प्रवेश करने से रोकने ही की है। उपाय केवल संकल्प बल व श्रद्धा है।

अ० १४७–विदेह भावना—यह ऊपर लिखी साधना से भिन्न है और उससे ऊँची है। इसके लिये साधक को यह दृढ़ विश्वास होना आवश्यक है कि आत्मा शरीर से भिन्न है, और बुद्धि से भी भिन्न है। विधि इस प्रकार है–किसी सुखासन पर बैठकर अथवा शवासन पर लेट कर यह ध्यान कीजिये कि मेरा आत्मा शरीर से बाहर निकल कर शरीर को देख रहा है। कुछ अभ्यास से यह धारणा दृढ़ हो जायेगी कि स्थूल शरीर तथा सूक्ष्म शरीर (जिसके अन्तर्गत मन बुद्धि हैं) आत्मा के अधीन हैं, और आत्मा को अधिकार है कि वह उनको आदेश देवे कि वे उसकी आज्ञा का पालन करें। बैठे आसन की अपेक्षा श्वासन पर लेटे हुए इस साधना को करना अधिक हितकर होगा। लेटे हुए यह भावना करनी चाहिये कि आत्मा ब्रह्मरन्ध्र स्थित होकर सारे शरीर व सूक्ष्म शरीर का निरीक्षण करता है।

अ० १४८—तीन शरीर व पांच कोश-उपनिषदों में तीन शरीरों का उल्लेख है, अर्थात (क) स्थूल शरीर, (ख) सूक्ष्म शरीर व (ग) कारण शरीर। तैत्तिरीय उपनिषद् की ब्रह्मवल्ली में पांच कोशों का वर्णन है। शरीर व कोश एक ही वस्तु हैं, उनको संगति इस प्रकार है-(१) अन्न मय कोश स्थूल शरीर ही का दूसरा नाम है (२) प्राणमय कोश (३) मनोमय कोश व (४) विज्ञान मय कोश, सूक्ष्म शरीर के अन्तर्गत हैं। (५) आनन्दमय कोश कारण शरीर का नाम है।

तैत्तिरीय उपनिषद् की भृगुवल्ली में यह कथा है कि भृगु ने अपने पिता अरुण से ब्रह्म ज्ञान की जिज्ञासा की। पिता ने भृगु को तप करने का आदेश करके पंच कोशों की और उनके द्वारा ब्रह्म के क्रमिक ज्ञान की शिक्षा दी।

मेरी लिखी **"पंचकोष व सूक्ष्मजगत्"** पुस्तक में इन तीन शरीर व पांच कोशों की विस्तार से व्याख्या की गई है।

कठ उपनिषद् की तीसरी वल्ली में एक अलंकार के द्वारा यह बतलाया गया है कि शरीर रथ है, इन्द्रियां घोड़े, मन रास है, बुद्धि सारथी है, और आत्मा रथी अर्थात इनका स्वामी है। Problems of Life नामक एक अंगरेजी पुस्तिका में मैंने इस अलंकार की व्याख्या की है।

कठ उपनिषद् के नीचे लिखे मन्त्रों में इन सबका तारतम्य वा उच्चावच्च संबंध बतलाया गया है—

इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्थाः अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिः बुद्धेरात्मा महान् परः॥
महतः परम व्यक्त भव्यक्तात् पुरुषः परः।
पुरुषान्नपरं कश्चित् सा काष्टा सा परा गतिः॥

(कठ ३। १०–१२)

(अर्थ) इन्द्रियों से परे इन्द्रियों के विषय हैं, उनसे परे मन है, मन से परे बुद्धि है, बुद्धि से परे महान आत्मा है, महान् से परे अव्यक्त है, अव्यक्त से परे पुरुष है, पुरुष से परे कुछ नहीं, वह परा काष्ठा व परम गति है।

अ० १४६—श्री अरविन्दजी के ग्रन्थों में मन का स्थान—श्री अरविन्दजी ने **साधारण मन** के लिये Vital Mind शब्द का प्रयोग किया है। उसके ऊपर चार और **मन** के स्तर माने हैं, अर्थात् Higher mind वा उच्च तर मन, Illumined mind वा प्रकाश युक्त मन, Over mind वा अति मानस। इनके ऊपर Super mind **अधिमानस** है, जिसकी प्राप्ति श्री अरविन्द की योगसाधना का अन्तिम ध्येय है। परन्तु उसकी प्राप्ति श्री अरविन्द केवल अपने वा अपने कुछ चुने हुए शिष्यों के लिये नहीं चाहते किन्तु मनुष्य मात्र के लिये चाहते हैं, यह बात उनके लेखों में बार बार कही गई है। उनका विश्वास है संसार के क्रमिक विकास के अनुसार ऐसा समय आवेगा जब कि सारी मनुष्य जाति को इसी प्रकार **अधिमानस** दशा वा Super mind की प्राप्ति हो जायगी जैसा कि पूर्व समय में विकास के अनुसार **साधारण मन** की प्राप्ति हुई थी।

श्री स्वामी ओमानन्दजी के मतके अनुसार पूर्वलिखित मन की सब दशाऐं पातंजल योग की **संप्रज्ञात समाधि** के अन्तर्गत हैं जिसके चार प्र कार अर्थात् **वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत, और अस्मितानुगत** योगदर्शन समाधि पाद के सूत्र १७ में बतलाये गये हैं, और जिनकी व्याख्या **पातंजल योगप्रदीप** के पृ० ४०–४३ तथा ४६–५३ पर की गई है। **असंप्रज्ञात समाधि** योग की सबसे ऊँची अवस्था है। उसीके सिद्ध होनेपर कैवल्यकी

प्राप्ति होती है। उसका वर्णन योग दर्शन समाधि के सूत्र १८ में है और व्याख्या पातञ्जलयोग प्रदीप के पृष्ठ ४७-४८, ५३-५४ तथा १४१-१४२ में की गई है।

परिशिष्ट

(मेरी लिखी हुई पुस्तकों की सूची)

अनुच्छेद १२ व १२५ क में मेरी लिखी कुछ पुस्तकों की ओर संकेत किया गया है। यहां उन सब की पूरी सूची संक्षिप्त-वर्णन के साथ दी जाती है। इससे पूर्व इन पुस्तकों का प्रकाशन आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश और कुछ का सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभा के द्वारा होता रहा है, भविष्य में इन सब के नवीन संस्करणों का प्रकाशन आर्य साहित्य मंडल अजमेर के द्वारा हुआ करेगा जैसा कि २ फरवरी १९५२ के रजिस्टरी इकरार नामे के द्वारा निश्चित हुआ है।

१ **ज्योतिश्चन्द्रिका**—यह पुस्तक सन् १८९० ई० में लिखी गई जब कि मैं आगरा कालिज में शिक्षा पा रहा था। इसमें मैंने सूर्य्यसिद्धान्त, सिद्धान्तशिरोमणि, आदि ज्योतिष के ग्रन्थों के प्रमाणों द्वारा यह दिखलाया है कि पृथ्वी का गोल होना, उसके व्यास व परिधि, उसका सूर्य्य की परिक्रमा करना, चन्द्र व सूर्य्य-ग्रहण आदि की जो शिक्षा पश्चिमी विज्ञान द्वारा अब दी जाती है, वह हमारे शास्त्रों में पहले से वर्तमान है। अन्तिम भाग में **फलित ज्योतिष** का खण्डन किया गया है और यह दिखलाया है कि फलित के ग्रन्थ सब ४०० या ५०० वर्ष के भीतर के बने

हुए हैं, प्राचीन काल के नहीं है। पुस्तक का अच्छा मान हुआ। स्व० महात्मा मुंशीरामजी ने अपने सद्धर्म प्रचारक पत्र में उसकी बहुत प्रशंसा की थी। पूना के एक महाराष्ट्र पत्र ने उसका मरहठो भाषा में अनुवाद भी प्रकाशित किया। उस समय संयुक्त प्रान्त की आर्य प्रतिनिधि सभा का कोई प्रकाशन विभाग नहीं था। उसको सन् १८६३-६४ में मैंने ही स्थापित किया था। ज्योतिश्चन्द्रिका के पहले दो संस्करण मेरे एक मेरठ के मित्र स्व० रामचन्द्रजी वैश्य ने प्रकाशित किये। पीछे आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान स्व० श्री पं० **तुलसीरामजी** ने अपने मेरठ स्थित "स्वामी प्रेस" में मेरी अनुमति से कई संस्करण प्रकाशित किये। उनके स्वर्गवास होने के बाद आर्य प्रतिनिधि सभा युक्त प्रान्त के प्रकाशन विभागसे उसका प्रकाशन होने लगा। मेरे पास इस समय उक्त विभागका सं० १९९२ वि० का संस्करण है जो तृतीय वार २००० प्रतियों से छपा था।

(२-६) सं० १९५० के लगभग, मैंने बदायूं निवासी अपने मित्र **श्री स्व० सकटमल** की आर्थिक सहायता से संयुक्त प्रान्त की आर्य प्रतिनिधि सभा की अध्यक्षता में **आर्य टैक्ट सोसायटी** स्थापित की। मैं स्वयं उसका मन्त्री हुआ। सबसे पहले निम्न लिखित दो ट्रैक्ट— 1. Vedic Text No. 1 Constitution of Human Society, **और** 2. Vedic Text No. 2 Septenary composition of Solar Light **मेरे** लिखे हुए

प्रकाशित हुए। उनके आर्य भाषा में अनुवाद भी (१) **मनुष्य समाज** तथा (२) **सूर्य सप्ताश्ववर्णन** नाम से छापे गये।

इसके बाद अंग्रेजी के दो और ट्रैक्ट (५) Problems of Life और (६) Problems of the Universe मेरे लिखे हुए प्रकाशित हुए। ये सब पुस्तकें सभा की ओर से अब तक प्रकाशित होतीरही हैं। Problems of Life का हिंदी अनुवाद भी "जीवन यात्रा" के नामसे छपा था और उर्दू अनुवाद को पंजाब के प्रसिद्ध आर्य्य सज्जन स्व० श्री वजीरचन्द विद्यार्थिजी ने छपवाया था। Problems of Life का नया संस्करण अंग्रेजी में हाल ही में आर्य साहित्य मंडल ने प्रकाशित किया है।

(७) Caste System **कास्ट सिस्टम** (अंग्रेजी) मैंने सं० १९५७ (सन् १९००) में लिखा, यद्यपि इसकी सामग्री पहले ही कुछ मेरठ में ही संग्रह हो चुकी थी। पहले दो संस्करण संयुक्त प्रान्त की आर्य प्रतिनिधि सभा ने प्रकाशित किये। इसका तीसरा संस्करण आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से छपा, और चतुर्थ संस्करण प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब ने **केलिकट** (मलाबार) में ५००० प्रति की संख्या में छपवाया। कुछ समय से वह अप्राप्त रहा है। नवीन अंग्रेजी संस्करण आर्य साहित्य मंडल द्वारा छप चुका है। मैंने उसको गत मर्दुम शुमारियों के अंकों के अनुसार और पाकिस्तान के कारण देश विभाजन से जो राजनैतिक व सामाजिक परिवर्तन देश में हुए उनके अनुसार पूर्णतया अनुरूप Up-to-date कर दिया है।

(८) **कास्ट सिस्टम का हिन्दी भाषा में अनुवाद— "जाति भेद"**नाम से मेरे मित्र श्री रघुवरदत्तशरण दुबलिश M.A. ने किया था जो सन्१९१९में संयुक्त प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा की

ओर से छपा था। नवीन संस्करण अंग्रेजी संस्करण के अनुसार वर्तमान राजनैतिक व सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप होकर छपा है। वह सन् १९४८ में प्रकाशित हुआ।

(९) उक्त पुस्तक के गुजराती भाषा में दो बार अनुवाद प्रकाशित हुए। पहले अनुवाद में जो १९१२ में छपा था कुछ भूल रह गई थी। दूसरा अनुवाद शुद्ध करके ५००० की संख्या में प्रकाशित हुआ।

(१०) पूर्वोक्त पुस्तक के महाराष्ट्र तथा दक्षिण की कतिपय भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित हुए। दक्षिण प्रान्तों में जाति भेद के कारण शूद्रों पर घोर अत्याचार होता है। इसलिये वहाँ इस पुस्तक की अधिक मांग रही।

(११) मेरी लिखी सब पुस्तकों में बड़ी और अधिक ख्याति प्राप्त Fountain head of Religion नामक पुस्तक है। इसकी सामग्री भी बहुत अंश में मेरठ रहते समय मैं संग्रह कर चुका था। वह पहले गुरुकुल कांगड़ी के Vedic Magazine वैदिक मैगेजिन नामक मासिक पत्र में क्रम से छपती रही। सन् १९०९ में वह पुस्तक रूप में छपी जिसकी छपाई का प्रबन्ध विशेषतया मेरे मित्र श्री रा० ब० रतनलालजी M.A.L.L.B ने किया था जिनका मैं आभारी हूं। पहले चार संस्करण संयुक्त प्रदेश आर्यप्रतिनिधि सभा के ही प्रबन्ध से छपे। तीसरे व चौथे संस्करण से सभा के आदेश से पुस्तक की एक एक प्रति उन विद्यार्थियों को उपहार रूप से दी गई थी जिन्होंने यूनिवर्सिटी व कालिजों से बी० ए० की डिगरी प्राप्त की थी जैसा कि ईसाई मिशन बाईबिल की पुस्तक बहुधा दिया करते हैं। अंग्रेजी पुस्तक के पांचवे व छटे संस्करण स्व० श्री केशवदेव ज्ञानीजी के उद्योग से मदरास आर्यसमाज के द्वारा प्रकाशित हुए। सातवां संस्करण

आर्यसाहित्य मण्डल द्वारा छप रहा है। आशा है वह शीघ्र तैयार होजायगा। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभाके मन्त्री इस पुस्तक को यारुप व अमरीका के राष्ट्रदूतों के द्वारा तथा अन्य प्रकार से विदेशी शिक्षित लोगों में प्रचार के लिए इसकी मांग करते रहते हैं।

(१२) पूर्वोक्त पुस्तक के कतिपय गुजराती आदि भारतीय भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। आर्य भाषा में इसका अनुवाद आर्यमित्र के सुप्रसिद्ध सम्पादक श्री पं० हरिशंकर शर्मा ने किया था। उसके दो संस्करण युक्त प्रान्त की सभा द्वारा प्रकाशित हुए। तीसरा व चौथा संस्करण पंजाब के प्रसिद्ध प्रकाशक श्री राजपाल एण्ड सन्स द्वारा हुआ है। बड़ौदा के प्रसिद्ध कन्या महाविद्यालय, देहरादून के कन्या गुरुकुल तथा लगभग सब गुरुकुलों की धार्मिक शिक्षा में उक्त पुस्तक पढाई जाती है। सिद्धांत शास्त्री की धार्मिक परीक्षा की पाठविधि में भी शामिल है। इस पुस्तक का तामिल भाषा में अनुवाद एक मद्रास के सज्जन कर रहे हैं, और उड़िया भाषा का अनुवाद कटक आर्यसमाज के प्रधान श्री बलभद्र जी लगभग तैयार कर चुके हैं।

(१३) ऋषि दयानन्दजी की अर्ध निर्वाण शताब्दी के अवसर पर जो अजमेर में सन १९३३ वा सं० १९९० में मनाई गई थी कुछ अंग्रेजी भाषा के विशेष व्याख्यान तैयार कराये गए थे, इसके संयोजक स्व० श्री रामदेवजी आचार्य गुरुकुल कांगड़ी थे। मैंने उस अवसर के लिए एक निबन्ध "The Inner man and the Inner World" नामसे पंचकोष, आत्मा के तीन शरीर, तीन अवस्था, सांख्य के २५ तत्वादि के समन्वय विषय पर लिखा था, जो अंग्रेजी में मद्रास आर्य समाज की ओर से प्रकाशित हुआ परन्तु उपस्थित श्रोतागण

की मांग पर मैंने अजमेर में व्याख्यान आर्य भाषा ही में दिया। और इस कारण **"पञ्चकोश व सूक्ष्म जगत"** के नामसे आर्य भाषा में भी पुस्तक प्रकाशित हुई।

(१४) उपनिषदों का वैदिक साहित्य में बड़ा महत्त्व है। उपनिषदों के नाम से बहुत ग्रन्थ बनगये हैं। परन्तु प्राचीन और प्रामाणिक ये दस हैं ईश, केन, कठ, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय तैत्तिरीय, छान्दोग्य व बृहदारण्यक। इनमें ११ वां श्वेताश्वतर उपनिषद् भी शामिल किया जाता है। आर्य्य समाज इनको ही प्रामाणिक मानता है। स्वामी शंकराचार्य, श्री रामानुज, श्री मध्वाचार्य और अन्य आचार्यों ने भी केवल इन्हीं पर अपने भाष्य लिखे हैं।

ईश व मांडूक्य उपनिषदों के अंग्रेजी में भाष्य स्वनाम धन्य श्री प० गुरुदत्त विद्यार्थीजी ने किया जो अत्युत्तम है। मेरी जानकारी में शेष उपनिषदों के अंग्रेजी भाष्य किसी आर्यसमाजी विद्वान के किये हुए नहीं हैं। इस कारण **केन उपनिषद** का भाष्य अंग्रेजी में मैंने किया, और गत वर्ष **कठ उपनिषद** का भाष्य भी किया। ये दोनों पुस्तक सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से प्रकाशित होती हैं। मैंने दोनों में अंग्रेजी अनुवाद के साथ आवश्यक टिप्पणी भी दी है। मन्त्र के अनुवाद से पूर्व उसके प्रत्येक शब्द का अर्थ दिया गया है जिससे स्वाध्यायशील पाठकों को अर्थ समझने में सुगमता हो। **कठ उपनिषद** के आरम्भ में एक Introduction पूर्वोद्घात भी दिया गया है जिसमें कठ उपनिषद संबन्धी कुछ प्रश्नों पर प्रकाश डाला गया है।

*** इति ***

शुद्धाशुद्ध पत्र–Errata.

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	१३	निवली	निचली
१७	११	Excie	Excise
१६	१६	Hydrppohbia	Hydrophobia
२२	३	अलावा	अलग
२२	७	उत्तरगंगा	उत्तर काशी
२४	१८	कोटाद्वारा	कोटद्वारा
२६	२२	Sah	Shah
३१	५	अ० ३८	खण्ड ४–अ० ३८
३१	१५	हहले	पहले
३१	२०	नेरे	मेरे
३२	६	प्राप्त	प्राप्त
४१	१	कर	करें
४६	१५	को	की
४७	११	थी	दी
५१	७	उनके	उनके साथ
५१	१२	Suoseed	succeed
५२	१३	ो	हो
५३	१६	शुबह	शुबहा
५५	११	उप्रलो	उपलों
५६	११	ग	गया
५८	६	को	की
५८	११	जर्रों को	जर्रों की
६०	४	सलसिले	सिलसिले

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६०	११	गेरे	मेरे
६६	८	क	की
६६	२३	कार्यालय	कार्य
६७	२	मुझ	मुझे
६८	१७	१६५१	१६२१
७०	१६	टिहरी	(अ० ६८)-टिहरी
७२	२०	ोटर	मोटर
६२	१२	विवाहा	विवाह
६५	६	सभय	समय
११०	१	रामे	मेरा
११४	२०	देहवसान	देहावसान
११८	८	(१०४)	खण्ड–१३—प्यारेलालजी के विषय में (१०४)
१२५	१	×	खण्ड–१४ क—ज्वालापुर पहुंचना
१२८	१	से से	से
१३७	१२	अन्यक्ष	अध्यक्ष
१३७	१६	पं० भद्रदतजी	पं० भगवद् दत जी
१३६	६	सहित्य	साहित्य
१५६	२१	आर्दग्रंथ	आर्ष ग्रन्थ
१६५	१	×	(पहली पंक्ति के आरम्भ में जोड़ो) खण्ड–१६ (अ० १३३)
१६८	२१	देगा	दूंगा
१५६	२०	योग्द	योग्य
१७८	१४	ही	हैं
१८५	१२	जागीरदार	जमींदार

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८५	१३	जागीर के उतराधिकारी	उतराधिकारी
१८६	१६	वरने	करने
१८७	१	वस्त्व	वस्त्र
१८८	११	मल	महल
१६४	१६	अ—४०	अ—१४०
२०४	३	गर्दन	.गर्द
२०६	२०	स्वाम	स्वामी
२०८	१	अभीप	अभीप्सा
२११	१५	प्रजा	प्रज्ञा
२१४	२	उदाहरण	उद्‌घरण
२१५	११	श्वासन	शवासन
२२३	६	किया था	'धर्म का आदि स्त्रोत' नाम से किया था

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

पुस्तक वितरण की तिथि नीचे अङ्कित है । इस तिथि सहित १५ वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए अन्यथा ६ नये पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा ।

एक आशीर्वाद

श्री डा० स्वामी ज्ञानानन्दजी डी० एस० सी० (प्राग विश्वविद्यालय), पी० एच० डी० (लीवरपूल), पूर्व एसिस्टैंट डाइरेक्टर नैशनल फ़िज़िकल लैबोरेटरी *Asstt. Director National Physical Laboratory of India*, वर्तमान गौतमी प्रोफेसर फ़िज़िक्स, आन्ध्र विश्वविद्यालय ने लेखक के नाम एक पत्र में जो २५ दिसम्बर १९५४ को लिखा गया,—लेखक तथा पुस्तक के विषय में निम्न विचार प्रगट किये हैं :—

I am quite sure that the work would certainly be a great inspiration to many people. I often remember the days when I first met you, Your achievements, truthfulness, integrity, and honesty of purpose are and will be encouraging to the men of the present generation.

(अर्थ)— मुझको पूर्ण विश्वास है कि वह कृति निश्चय ही बहुत से लोगों को प्रोत्साहित करेगी । मुझको दिनों की बहुधा स्मृति आती है, जब आप पहिले मिले थे । आपकी योग्यता, सत्यप्रियता और व्यवहार की धर्मभावना वर्त्तमान युग के मनुष्यों को उत्साह प्रदान करेगी ।

ओ३म्

आर्य समाज के दश नियम।

१—सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चा

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी च

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना च किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी च

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व हितकारी नियम में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।